

# पुराण-सूक्ति-कोष

सम्पादक

श्री ज्ञानचन्द्र लिङ्गका

प्रो. प्रवीणचन्द्र जैन

सहायक सम्पादक

पं. भगवन्लाल पोल्याका

सुधी प्रीति जैन

संकलनकर्ता

डॉ. कस्तूरचन्द्र 'सुमन'

डॉ. बृद्धिचन्द्र जैन

प्रबन्ध सम्पादक

श्री नरेणकुमार सेठी

मंत्री

प्रबन्धकारिणी कमेटी

दिगम्बर जैन अतिथय क्षेत्र श्रीमहावीरजी

संपादक मण्डल

श्री ज्ञानचन्द्र लिङ्गका

डॉ. गोपीचन्द्र पाटनी

डॉ. कमलचन्द्र सोमानी

डॉ. हरचारीलाल कोठिया

श्री नवीनकुमार बज

श्री प्रेमचन्द्र जैन

प्रो. प्रवीणचन्द्र जैन

प्रकाशक

जैनविद्या संस्थान

दिगम्बर जैन अतिथय क्षेत्र श्रीमहावीरजी  
(राजस्थान)

# विषय-सूची

विषय

पृष्ठ सं०

बो शब्द

प्रस्तावना

सम्पादकीय

१. प्रचुरप्रेक्षा	प्रचुरप्रेक्षा की सुविधाएँ	५
२. प्रवर्तन		५
३. प्रवर्तन		५
४. प्रवर्तन		५
५. प्रवर्तन/गीत		५
६. प्रवर्तन		६
७. प्रवर्तन		६
८. प्रवर्तन		६
९. प्रवर्तन		६
१०. प्रवर्तन		६
११. प्रवर्तन		६
१२. प्रवर्तन		१०
१३. प्रवर्तन		१०
१४. प्रवर्तन		१०
१५. प्रवर्तन		१२
१६. प्रवर्तन		१४
१७. प्रवर्तन/कारण		१४
१८. प्रवर्तन		१६
१९. प्रवर्तन/क्षमता		१६
२०. प्रवर्तन/क्षमता		२०
२१. प्रवर्तन/गुरुत्व		२०
२२. प्रवर्तन/गुरुत्व		२०
२३. प्रवर्तन		२२
२४. प्रवर्तन		२२
२५. प्रवर्तन		२४
२६. प्रवर्तन		२४

२७. जीवन/मृत्यु	२४
२८. ज्ञान/अज्ञान	२६
२९. लय	३२
३०. लेश	३२
३१. लयाग	३४
३२. लयः	३४
३३. लक्षण	३४
३४. बाह्यक	३६
३५. दूरदर्शिता	३६
३६. ईद/पुरुषार्थ/कर्म	३६
३७. धर्म/अधर्म	४४
३८. ध्यान	५०
३९. धैर्य	५०
४०. मिथ्या/प्रज्ञा	५०
४१. निमित्त	५२
४२. निर्भीकता	५२
४३. निवृत्ति	५२
४४. निवृत्त	५२
४५. नीति	५२
४६. न्याय/अन्याय	५४
४७. पदाक्षर	५४
४८. परिग्रह/भोग	५४
४९. परिणाम/भाव	६०
५०. पर्याय/भव	६२
५१. पुद्गल	६२
५२. पुण्य/पाप	६२
५३. प्रत्यक्ष	७०
५४. प्रसाद	७०
५५. प्रिय	७०
५६. शंभ/मृत्ति	७०
५७. शक्ति	७२
५८. भोजन	७२
५९. मन	७४

६०. मध्यस्थ	७४
६१. महापुरुष	७४
६२. मान/अपमान/विनय	७८
६३. माया	७८
६४. भिक्ष/सेवी/सन्नु	७८
६५. मोह	८०
६६. वश/अपवश	८२
६७. भीषण/वरा	८२
६८. राग/विराग/द्वेष	८२
६९. कप	८६
७०. लोक	८६
७१. लोभ/लोच/सम्तोष	८६
७२. वचन/उक्ति/गीत	८८
७३. वस्तु/पदार्थ	८८
७४. वरा/अति	९०
७५. विद्वान्	९०
७६. वस	९०
७७. व्यवहार	९२
७८. व्यसन	९२
७९. वाक्कि	९२
८०. शील	९४
८१. संकल्प	९६
८२. संयोग/विमोग	९६
८३. संकलि	९८
८४. सज्जन/दुर्जन	९८
८५. समय	१०४
८६. समग्रस्थ	१०६
८७. सम्प्रवर्तन/भिर्यात्न	१०६
८८. साधु	१०६
८९. सुख/दुःख	१०८
९०. स्थान	११०
९१. स्वजन	११०
९२. स्वामी/शासन/भुत्व	११०
९३. स्वास्थ्य	११२
९४. द्विषा/अद्विषा	११२
९५. विविध	११४

## दो शब्द

अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करने के लिए 'भाषण' की प्रकृति में जो भाषागत विभेदता प्राप्त है वह प्राणिजगत् में कव्य किसी को भी प्राप्त नहीं है। भाषा के माध्यम से भाषण अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। अपने विचारों को सर्वजनहिताय अभिव्यक्त करने एवं स्थायीरूप प्रदान करने का प्रयास ही साहित्य-सृजन का आधार है।

साहित्य जाति, धर्म, समाज, देश-विदेश की सांस्कृतिक स्थिति का परिचायक तो होता ही है साथ ही अतीत में पवित्र घटनाओं एवं तथ्यों का ज्ञान भी करता है और भावी संभावनाओं के सम्बन्ध में सतर्क-सावधान भी करता है। साहित्य-सर्जक अपने मत या विचार के पोषण के लिए प्रचुर अपनी अभिव्यक्ति को सरस, सटीक एवं मर्मस्पर्शी बनाने के लिए शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

सूक्ति, साहित्य-उपवन में से चुने हुए कुछ लघु-पुष्पों का सुमियोजित, सुन्दर संयोजन है। सूक्ति का शाब्दिक अर्थ है सु—सुन्दर, सुष्टु; उक्ति—वचन, वाक्य अर्थात् वह वाक्य जो सुन्दर, मनोहारी एवं कर्णप्रिय हो और साथ में हितकारी हो। अहितकारी वाक्य 'सूक्ति' नहीं होता। अनुभवों का आधार, कुछ विशिष्ट शब्दों का कलात्मक संयोजन, मर्मस्पर्शी शैली और संक्षिप्तता सूक्ति की विशेषताएं हैं। सूक्ति में आवश्यक साथ की धरा पर जीवन के गहन चिन्तन व अनुभवों का निचोड़ होता है।

सूक्ति का प्राण है—संवेदनशीलता। सूक्ति बहुत कम शब्दों में अपने कव्य की अभिव्यक्ति करती है जो गंभीर एवं सटीक होती है इसीलिए कथन की दृष्टि में सूक्तियां बहुत सहायक होती हैं और श्रोता के मन पर सीधा प्रभाव डालती हैं।

साहित्य जगत् में तो सूक्तियों का प्रयोग बहुलता से पाया जाता ही है; भोंपड़ी से लेकर महलों तक, विखित-प्रतिखित सभी वर्गों में अपने दैनिक बोल-चाल में भी सूक्तियों का प्रयोग सामान्य बात है।

जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों, विषयों, ग्रंथों वधा-नीति, गुण, परम्परा, विश्वास, लोक-व्यवहार, सुख-समृद्धि, आपत्ति-विपत्ति, धार्मिक सिद्धान्त, उत्सव-त्योहार आदि सभी से सम्बन्धित सूक्तियाँ जनसामान्य में प्रचलित व साहित्य में विलम्बित हैं / उल्लिखित हैं। एक ही अभिप्रायः को उचित करनेवाली संकड़ी सूक्तियाँ विश्व की विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध होती हैं।

सूक्तियों की लोकप्रियता उनकी मूल्यवस्तु के कारण है। सूक्तियाँ साहित्य-दोहन से प्राप्त व्युत्पन्न हैं। वास्तव में सूक्तियाँ कालजयी, देश-काल की सीमा से मुक्त, य-मृत होती हैं।

भारत में प्राचीनकाल से ही सूक्ति-सुधावित संग्रहों की सुदृढ़ परम्परा चली आ रही है। मज-तज बिकारी हुए दुर्लभ भाग्य की एक मञ्जूषा में सदावित, एक-जित, संवृहीत करना जिससे उसके गौरव-मूल्य-महत्त्व आदि से लाभ लेना मानव लिए सुलभ हो सके, यही उद्देश्य होता है सूक्ति संकलन का।

पुराण सूक्तियों के सञ्चार हैं। उनकी सूक्तियों से जनसामान्य साभाम्बित ही इसी दृष्टिकोण से जैनविद्या संस्थान द्वारा संस्कृत भाषा के पाँच प्रमुख जैन पुराणों वधा-महापुराण, हरिवंशपुराण, पद्मपुराण, वाणवपुराण एवं वीर अर्थमानचरित में से सूक्तियों का संकलन कर प्रकाशन किया जा रहा है।

ये सूक्तियाँ आचार-विचार, लोक-परलोक, जीवन-मृत्यु आदि विषयों से सम्बन्धित हैं। इनमें कहीं मन्धीर दार्शनिकता का पुट है तो कहीं सहज व्यावहारिकता की झलक। कहीं सदाचार का पाठ है, कहीं परोपकार, धाम, करुणा, आदि सुसंस्कारों की शिक्षा है तो कहीं मनीति के दुष्परिणामों से अवगत कराकर उनके लिये वर्जना। कहीं लौकिक धर्म की धारा प्रवाहित है तो कहीं वैराग्य की सरिता।

इन सूक्तियों के संकलन, सम्पादन, प्रुफरीडिंग हेतु सभी सहयोगी धन्यवादार्ह हैं।

जन्म जेस के स्वामी श्री धर्म काता भी इसके मुद्रण के लिए धन्यवाद के पात्र हैं।

जयपुर

वीर शासन जयन्ती

आवण कु० १, बी. नि. भं. २५१३

११-७-८७

ज्ञानचन्द्र सिन्हाका

संयोजक

जैनविद्या संस्थान समिति

जीन्हावीरजी

## प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का एक निजिष्ठ स्थान है। जैन मनीषियों, भाषायों आदि साहित्य-सर्जकों ने सायुर्वेद, ज्योतिष, इतिहास, भूगोल, गणित, काव्य, नीति, संगीत, वर्णन, भाषा, कला, पुरातत्त्व, अध्यात्म आदि सभी विषयों पर अपनी मंथीर, सरस और ग्रीढ़ लेखनी बसाई है।

जैन साहित्य की एक विधा है 'पुराण-साहित्य'। इसमें चौबीस तीर्थंकरों, बारह चक्रवर्तियों, भी वाराणसी, भी प्रतिनारायणों और भी बलवर्षों इस प्रकार वेसठ महाकाव्यों (जैन परम्परा में मान्य प्रसिद्ध महापुरुषों) का विस्तृत जीवन-चरित, उनके पूर्वभव आदि का वर्णन होता है। साथ ही इनसे सम्बन्धित ग्रन्थ महात्त्वपूर्ण एवं निजिष्ठ पुरुषों के उपाख्यान भी पुराणों में विवद हैं। पुराणों के सुवन का मुख्य प्रयोजन है कि इन महापुरुषों के चरित को जानकर हम भी उन जैसे धर्मपथिक, भावशील, अन्याय और पाप से दूर रहनेवाले परोपकारी, नमस्की एवं आत्मबली बनें। अपने अधिकार की रक्षा और दूसरे पर आक्रमण न करने की वृत्ति ग्रहण है। ये सब प्रवृत्तियाँ लोकतन्त्र के लिए अत्यन्त प्राथम्यक हैं। पुराण हमें इन्हीं प्रवृत्तियों की ओर प्रेरित करते हैं। इस दृष्टि से पुराण-साहित्य महात्त्वपूर्ण है।

पुराण ज्ञान के सागर हैं। उनका अध्ययन-अवलोकन करते समय अनेक तथ्य उद्घाटित होते हैं, जीवन की कई दिशाएँ आलोकित होती हैं। अनुभव की अनेक शक्तियाँ/सीधियाँ खुलती हैं और सूक्ष्मीकृत मृत्ता प्राप्त होते हैं।

संस्मान के विद्वानों ने पुराणों का परिकीर्तन करते समय इन्हें ओज और संजोमा है। ये सरस, सरस एवं भावप्रवण सूक्तियाँ वार्तालाप प्रवचन, भाषा

आदि में प्रयोग करने पर उन्हें न केवल सौष्ठव प्रदान करती हैं अपितु बत्ता एवं श्रीला दोनों के लिए शिक्षाप्रद सिद्ध होती हैं ।

प्रस्तुत पुराण-सूक्तिकोष में ६५ विषयों से सम्बन्धित १०३२ सूक्तियाँ संगृहीत हैं जो जैनसाहित्य के प्रमुख पांच पुराणों यथा महापुराण, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, वीर कर्जमानचरित (पुराण) एवं पाण्डवपुराण के गर्भ में प्रस्तुत-  
 कीं ।

जैनविद्या संस्थान के विद्वानों ने इन्हें संगृहीत करने का जो कार्य किया है वह उसी प्रकार का बुझकर कार्य है जिस प्रकार गोलाखोर महान परिश्रम करके समुद्रतल से रत्नों को निकाल कर से आता है ।

हम इन विद्वानों को बधाई देते हैं, साथ ही जैनविद्या संस्थान की विद्या-  
 रसिक समिति और संस्थान की संस्थापिका दिगम्बर जैन धर्तृशाय जेठ  
 श्रीमहावीरजी की प्रबन्धकारिणी कमेटी दोनों धन्यवादार्ह हैं ।

आचार्यजीक प्रकाशित की पुस्तिकाएँ, की प्रकाशन

( डॉ. ) वरबारीलाल लोडिया  
 सेवानिवृत्त रीटर्, जैन, बीड दर्शन  
 काशी हिन्दू विश्वविद्यालय



## सम्पादकीय

पुराण भारतीय वाङ्मय के गौरव-ग्रन्थ हैं। जैन परम्परा में उनका धीरे भी विशेष महत्त्व है। तीर्थंकरों की वाणी को बिजिष्ट पारिभाषिक शब्द 'अनुयोग' नाम से व्यवहृत किया गया है। समस्त अनुयोग प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणा-नुयोग तथा द्रव्यानुयोग इन चार भागों में विभक्त है। इनमें से प्रथमानुयोग के अन्तर्गत अनुयोगों की पवित्रमूर्ति अतिशय प्रशंसित है।

पुराण शब्द की व्युत्पत्तियों में 'पूरणात् पुराणम्' भी अन्वयतम व्युत्पत्ति है। जैन तीर्थंकरों की वाणियों का पूरण करने के कारण इस साहित्य का नाम 'पुराण' पड़ा। पूरक पदार्थ में मूल पदार्थ से भिन्नता होते हुए भी सादृश्य बना रहता है। इसमें मूल पदार्थ से एकजातीयता अनिवार्य है। फलतः पुराण तीर्थ-करों की ज्ञान एवं तपःसाधना के कारण अस्त-प्रस्तुति वाणियों का गीली विशेष में उपस्थापन कर जनमानस का पथप्रदर्शक है। यह भी कहा जा सकता है कि पुराणों का तीर्थंकरों की वाणी से सीधा सम्बन्ध है।

जैन वाङ्मय में साहित्य, धर्म, दर्शन आदि की सतत प्रवाहशील चाराधों के साथ-साथ सूक्तिधारा भी आरम्भ से ही अविरोध रूप से बहती रही है। जीवन की गहन अनुभूतियों को भारत के मनीषी आचार्यों, कवियों आदि ने काव्यमयी भाषा में जनमानस के कल्याण के लिए—लोककल्याण के लिए—प्रस्तुत किया है। इस प्रकार सूक्तियां भूतकाल की उपलब्धियों का सार ली हैं ही, वे वर्तमान युग के लिये पथ-प्रदर्शिका भी हैं। नैतिक उत्थान के प्रेरक अनेक पद अथवा पद्यात्मक रचनाएँ सूक्तियों के रूप में समाज में प्रचलित हो गई हैं जो आप्त-जन की तरह कठिन एवं गहन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करके समाज के लिए वरद सिद्ध

हुई हैं। संकटग्रस्त मानवमात्र को सूक्तियों बन्धुजन की बाँधि उचित मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं।

शाब्दिक दृष्टि से सुन्दरतापूर्वक कही गयी उक्ति के अर्थ में सूक्ति का प्रयोग होता है। संस्कृत वाङ्मय में सूक्ति का प्रयोग एक विशेष अर्थ में किया जाता है। सूक्ति वह पदरचना है जो स्वयं में परिपूर्ण हो और नैतिक, चार्ित्रिक, धार्मिक अथवा रागात्मक किसी एक विचार को प्रस्तुत करने में समर्थ हो। इस प्रकार वाङ्मयता के साथ कही गयी मुक्तक से साम्य रखनेवासी रचना को सूक्ति कहा जाता है। यद्यपि सूक्ति और सुभाषित दोनों ही मुक्तककाव्य में परिगणित हैं किन्तु प्रयोज्यता की तरह दोनों के लिए किसी पूर्वापर सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं होती। जैसा पहले कहा गया है, वे अपने आप में पूर्ण एवं स्वतन्त्र होते हैं। दोनों उद्देश्य में भी समान हो हैं। इसमें अन्तर केवल इतना ही है कि सुभाषित विस्तार की दृष्टि से पूरे पद में रहता है जबकि सूक्ति श्लोकार्थ अथवा श्लोक के एक चरण में होती है।

सूक्तियों प्रायः दो कारणों से सरसधिक प्रिय एवं अभिरुचि का विषय रही हैं। एक तो वे सुकृतिता से युक्त होती हैं। इनकी समझने में कठिन श्रम एवं साधना की अधिक अपेक्षा नहीं रहती, दूसरे वे सरसता से कथकथनी हो जाती हैं तथा समुचित अवसर पर सामान्यक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इनका प्रयोग होता रहता है।

साधारण एवं व्यापार सम्बन्धी इन सूक्तियों के महत्त्व को जितना प्रतिपादित किया जाय उतना कम होगा। समीपियों से अपनी अथाध अर्थवैतना एवं सत्तम के द्वारा समाज के लिए सूक्ति-द्वारा प्रवाहित करने का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। जीवन के सराम और बीतराश इन दोनों पक्षों की ओर उनकी दृष्टि रही है। दोनों ही पक्षों से सम्बन्धित सूक्तियों का अभिव्यक्त समाज का उन्नयन रहा है।

जैनसाहित्य में सूक्तित्व पूर्णरूप से विकसित हुआ है। इसके विकास-क्रम पर दृष्टिपात करने से इसका स्वल्प स्पष्ट हो जाता है। विकास की प्रथम अवस्था है निर्देश। इसमें किसी व्यक्ति विशेष को अह्य करके उपदेश दिया जाता है। यह उपदेश नैतिक, धार्मिक आदि किसी भी विषय का हो सकता है। विकास के दूसरे चरण में सूक्ति व्यक्ति से उठकर समष्टि तक पहुँच जाती है। अब वह केवल व्यक्तिपरक न रहकर समाज में फैल जाती है।

सूक्तियों में विस्तार का अभाव होता है, पर उनकी संक्षिप्ति महज ही तीव्रता में परिणत हो जाती है। वह तीव्रता मानव को कर्मठ बनाने में—सही मार्ग पर चलने में सहायक होती है।

सूक्तियों का संकलन कर कोष के रूप में उन्हें प्रस्तुत करने का महत्त्व भी कम नहीं है। कोष से सूक्तियों के रचयिताओं का तो बोध होता ही है साथ ही वे सहज ही विस्मृत भी नहीं हो पाती।

प्रस्तुत सूक्तिकोष की रचना पुराणकोष तैयार करते समय साईं हुई संकल्पों सूक्तियों के अध्ययन से प्रेरणा पाकर हुई। इस कोष में समूहीत सूक्तियों के छोट निम्नांकित पांच जैन पुराण हैं—

१. पथपुराण—रविदेवाचार्य (आठवीं शती विक्रम)
२. हरिवंशपुराण—जिनदेवाचार्य (नवीं शती विक्रम)
३. महापुराण—जिनदेवाचार्य द्वितीय एवं आचार्य गुणभद्र (नवीं-दसवीं शती विक्रम)
४. कीरवर्धमानचरित (पुराण)—भट्टारक सकलकीर्ति (ग्यारहवीं शती विक्रम)
५. पाण्डवपुराण—मुधवन्धाचार्य (सत्रहवीं शती विक्रम)

ये दुरारा विक्रम की आठवीं सताब्दी में सत्रहवीं सताब्दी तक संस्कृत भाषा में विरचित विभिन्न जैन पुराणों की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

इन सूक्तिकोष से पुराणकारों की परिपक्व प्रज्ञा एवं ग्रीढ़ प्रतिभा का परिचय प्राप्त होता है। इन सूक्तियों में संस्कृत काव्य-शैली का प्रकट रूप प्रस्फुटित हुआ है। इनमें मौलिकता भी है। इनकी भाषा चमत्कारपूर्ण, गागर में सागर भर देनेवाली है। पुराणकारों ने अपनी असर कृतियों में सूक्ति कवी मणि-मालाओं को इस प्रकार संजोया-पिरोया है कि बर्ण विषय शुष्क एवं नीरस न रहकर तरस एवं अधिकर बन गया है। इस कोष में विविध विषयों पर आधारित १०३२ सूक्तियाँ समूहीत हैं। इनसे जैनपुराणकारों की रचना-शक्ति स्पष्टरूप से परिनिष्ठित होती है।

सूक्तियों के विषयों को वर्णक्रमानुसार विभक्त किया गया है एवं प्रत्येक सूक्ति के साथ [ ] उसके स्रोत का संकेत भी दिया गया है। सूक्ति के सामने उसका हिन्दी अनुवाद सरस और सुगंध भाषा में दिया गया है जिससे संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ पाठक भी सूक्ति का नाभ उठा सकें। समग्र रूप से जैन पुराणों की सूक्तियों के इस प्रकार के कोष का सम्पादन और प्रकाशन पहली बार हो रहा है। प्राणा है यह कोष पाठकों को रुचिकर और लाभप्रद सिद्ध होगा।

इस कोष की सूक्तियों का संकलन संस्थान के अधिसहायक डॉ. कस्तूरचन्द्र सुमन ने किया है, आरम्भ में मोक्षी श्री सहायता डॉ. रुद्रचन्द्र जैन ने भी दी थी।

इसके सम्पादन और ग्रंथ संशोधन में सहायता मेरे सहयोगी पं. भंवरलाल पोल्याका और कु. प्रीति जैन ने दी है । मुद्रण अर्नेल प्रेस के स्वामी श्री अजय काला ने किया है । इन सबकी सहायता के अभाव में तथा डॉ. गोपीचन्द्र पाटनी एवं संयोजक महोदय श्री ज्ञानचन्द्र सिन्धुका की प्रेरणा के बिना इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव नहीं था । मैं इन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

(प्रो.) प्रवीणचन्द्र जैन



# पुराण सूक्ति-कोष

## अनुप्रेक्षा

- १ विनाऽनुप्रेक्षणींश्चित्तसमाधानं हि दुर्लभम् । म. पु. ४२.१२७
- २ मनुष्यबोधितमिदं क्षरणान्नासमुपागतम् । प. पु. ११८.१०३
- ३ सर्वं भंगुरं विवस्संभवम् । म. च. ५.१०१
- ४ क्षणधर्मसि भगवत् । य. च. ११.१३३
- ५ विद्युदाकाशिकं ह्येतज्जनस्सारविबोधितम् । प. पु. ११०.५५
- ६ कस्यात्र बद्धमूलस्त्वम् ? म. पु. ६६.११
- ७ कोऽत्र कस्य सुहृद्वचनः ? प. पु. १२.५१
- ८ न कोऽपि सारणं जातु कम्पस्यावेस्तथाङ्गिभाम् । म. च. ११.१४
- ९ संसारे सारगम्योऽपि न कश्चिद्विह विचलते । प. पु. ७८.२४
- १० संसारं दुःखभाषणम् । प. पु. ८.२२०
- ११ संसारः सारवन्धितः । प. पु. १२.५०
- १२ निःसारे सद्यु संसारे मुचलेसोऽपि दुर्लभः । म. पु. १७.१७
- १३ असारोऽयमहोऽयमसं संसारो दुःखपूरितः । प. पु. ३६.१७२
- १४ प्राप्यते सुमहद्दुःखं जन्तुभिर्भवसागरे । प. पु. ५.१२१
- १५ दुःखं संसारतन्त्रकम् । प. पु. २.१५१
- १६ एकाकिर्लव कर्तव्यं संसारे परिवर्तनम् । प. पु. ५.२३१
- १७ एक एव भवमृत्प्रजायते मृत्युमेति पुनरेक एव तु । ह. पु. ६३.६२
- १८ संसारोऽनादिरेवायं कथं स्यात् प्रीतये सताम् ? म. च. ६.२१
- १९ सर्वं तु दुःखमेवात्र सुखं तत्रापि कल्पितम् । प. पु. १४.४६

- मनुप्रक्षार्यों का चिन्तन किये बिना चित्त का समाधान कठिन है ।
- यह मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर में नष्ट हो जाता है ।
- संसार में उत्पन्न सभी वस्तुएं क्षणभंगुर हैं ।
- संसार क्षणभंगुर है ।
- संसार बिजली के समान क्षणभंगुर तथा सारहीन है ।
- इस संसार में किसी की भी जड़ मजबूत नहीं है ।
- संसार में कोई किसी का मित्र नहीं है ।
- प्राणियों को रोग और मरण से बचाने के लिए कोई कभी पारण नहीं है ।
- संसार में कुछ भी सार नहीं है ।
- यह संसार दुःख का स्थान है ।
- संसार असार है ।
- इस असार संसार में लेखमात्र भी सुख दुर्लभ है ।
- यह संसार असार और अत्यन्त दुःखों से भरा है ।
- प्राणी संसाररूपी सागर में बहुत दुःख पाते हैं ।
- दुःख ही संसार का दूसरा नाम है ।
- जीव को संसार में अकेले ही परिभ्रमण करना पड़ता है ।
- यह जीव अकेला ही जन्मता और अकेला ही मरता है ।
- यह अनादि संसार सज्जन पुरुषों की प्रीति के लिए नहीं हो सकता ।
- इस लोक में सब दुःख ही दुःख है, सुख तो कल्पनामात्र है ।

## अवसर की ध्येष्ठता

- २० कालज्ञानं हि सर्वेषां नयानां युष्मिन् संस्थितम् । प. पु. २४. १००  
२१ कालनिधिं दुर्गते नयनेदितम् । ह. पु. ६३. ३१

## अवस्था

- २२ सर्वसाधारणं नृत्वाभावस्यान्तरवर्तनम् । ह. पु. २१. ४४

## अवश्य

- २३ अभेद्यमृतवल्लीतो विषस्य प्रसवः कचम् ? प. पु. ७. १६७  
२४ अक्षतम्य तिलाकण्डे शीर्षां तर्तुं न शक्यते । प. पु. १२३. ७५  
२५ न हि सागररत्नाभात्पुनपतिः सरसो भवेत् । प. पु. ३१. १५५  
२६ बालुकापीडनाद् बाणस्नेहः संवापतेऽथ किम् ? प. पु. ११८. ७६  
२७ नीरनिर्गमने लब्धिर्नवनीतस्य किं कृता ? प. पु. ११५. ७६

## आत्मा—जीव

- २८ अतः किं शुद्धिरात्मनः ? म. पु. ७४. ६१  
२९ आत्मलाभात्परं ज्ञानम् । पा. पु. २५. ११५  
३० आत्मलाभात्परं सुखम् । पा. पु. २५. ११५  
३१ आत्मलाभात्परं ध्यानं । पा. पु. २५. १२५  
३२ आत्मलाभात्परं यदम् । पा. पु. २५. ११५  
३३ कुरुष्व चित्स्वकन्धुताम् । प. पु. १०६. १२६  
३४ अनावसिद्धो नास्तीह कश्चन । म. पु. ४२. १०१  
३५ याति जीवोऽप्यनेककः । प. पु. ३१. १४५



- समय का ज्ञान सब नयों से श्रेष्ठ है ।
- धक्कर को जानने वाला पुरुष निश्चय ही यथोचित कार्य करता है ।
- मनुष्यों की व्यवस्थाओं का परिवर्तित होना सामान्य बात है ।
- प्रमृत् की बेल से विष की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।
- कंठ में लिप्ता बांधकर मुँहासों से तैरा नहीं जा सकता ।
- समुद्र के रानों की उत्पत्ति सरोवर से नहीं हो सकती ।
- बालू को पेसने से जेलमात्र भी तेल नहीं निकल सकता ।
- पानी के मचने से भस्मन की प्राप्ति नहीं हो सकती ।
- जल से आत्मा की छुड़ि नहीं हो सकती ।
- आत्मलाभ से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है ।
- आत्मलाभ से बढ़कर कोई सुख नहीं है ।
- आत्मलाभ से बड़ा कोई ध्यान नहीं है ।
- आत्मलाभ से बड़ा कोई पद नहीं है ।
- अपने चैतन्य स्वरूप के साथ बंधुता करो ।
- कोई भी जीव अनादि से सिद्ध नहीं होता ।
- यह जीव अकेला ही जाता है ।

३६- पक्षी वृक्षमिव त्यक्त्वा देहं जन्तुर्गमिष्यति । प. पु. ३१.२३६

३७- भवे चतुर्गती भ्राम्यन् जीवो दुःखैश्चित्तः सदा । प. पु. १७.१७५

३८- एकाकी जायते प्राणी ह्येको याति यमान्तिकम् । य. च. ११.३५

३९- विद्यते स प्रवेशो न यत्रोत्पन्ना मृता न च । य. च. ११.२६

४०- कार्यार्थसम्यगर्थोर्णयं विरोधिगुरुष्वयोनतः । म. पु. ५.५२

४१- विचित्रं कस्य संसारे प्राणिनां मटचेष्टितम् । प. पु. ८५.६२

### धायु

४२- प्रतीक्षते हि तत्कालं धायुः कर्मप्रबोधितः । प. पु. ४४.१००

४३- धायुर्वागुत्तरं । प. पु. ४६.१६२

४४- धायुर्जलं गतस्यायुः । म. पु. ४८.६

४५- घटिकाजलधारेण गतस्यायुःस्थितिर्द्रुतम् । म. पु. १७.१६

४६- प्रतीक्षन् गतस्यायुः । म. पु. ८.५४

४७- धायुर्नित्यं यमाक्रान्तम् । य. च. ११.५

४८- धायुरेव निजत्रासकारणम्,  
तत्क्षये भवति सर्वथा क्षयः । ह. पु. ६३.६६

४९- धायुःकर्मणिभावेन प्राप्तकालो विपद्यते । प. पु. ५२.६६

### आशा

५०- किमाशा नावसम्बधते ? म. पु. ४३.३०५

- जैसे पक्षी वृक्ष को छोड़कर चला जाता है वैसे ही यह जीव शरीर को छोड़कर चला जायगा ।
- चतुर्गतिरूप संसार में अन्तर्गच्छ करता हुआ जीव नाना दुःखी रहता है ।
- जीव अकेला ही जन्म लेता और अकेला ही मरता है ।
- संसार में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ जीवों का जन्म और मरण नहीं हुआ हो ।
- शरीर और चेतन में परस्पर विरोधी गुण होने में दोनों एक नहीं हो सकते ।
- संसार में प्राणियों की चेष्टाएं नट की चेष्टाओं के समान विभिन्न होती हैं ।
- कर्म से प्रेरित मृत्यु अपने योग्य समय की प्रतीक्षा करती ही है ।
- आयु बाल्य के समान अल्प है ।
- आयु कभी जल (हिम के समान) शीघ्र गलनशील है ।
- आयु की स्थिति घटी—वृद्ध की अवस्था के समान शीघ्रता से कम होती रहती है ।
- आयु प्रतिक्षण क्षीण होती जाती है ।
- आयु सदैव यम से आक्रामक है ।
- आयु ही अपनी रक्षा का कारण है, उसका क्षय हो जाने पर सब प्रकार से क्षय हो जाता है ।
- आयुर्कर्म की समाप्ति पर मृत्यु निश्चित है ।
- आशा सब वस्तुओं की होती है ।

५१ आत्मा हि महती नृणाम् ।

म. पु. ४३.२६८

५२ आशापाशवशाज्जीवाः मुच्यन्ते धर्मबन्धुना ।

य. पु. १४.१०२

आश्रय

५३ आश्रयः कस्य वीक्षिष्टं विमिष्टो न प्रकल्पते ?

म. पु. ५८.२८

५४ मलिनानपि नो धत्ते कः भित्तानन्यायिनः ?

म. पु. ६.७६

५५ स्वीयते दिनमप्येकं प्रीतिस्तत्रापि जायते ।

य. पु. ६१.४५

५६ आश्रयसामर्थ्यात् पुंसां किं नोपजायते ?

य. पु. ४७.२०

दुःखम्

५७ लब्धसुखमिदमसंख्याद् भवन्तीप्सितसिद्धयः ।

म. पु. ६८.६३८

५८ निस्तारभीहितं सर्वं संसारे दुःखकारणम् ।

य. पु. ३६.३६

५९ विविधस्यामरगणितानाम् ।

म. पु. ८.५७

६० सर्वो हि वाञ्छति जनो विषयं मनोज्ञम् ।

म. पु. २६.१५३

६१ आह्लादः कस्य वा न स्याद् ईप्सितार्थसमाप्तये ?

म. पु. ४३.२८३

६२ जम्बुरगतकवचस्थो हस्त जीवितमोहते ।

म. पु. ४६.४

६३ सोपाया हि विधीयते ।

म. पु. १५.६७

उत्पत्ति

६४ सूत्रतः कस्य नाश्रयः ?

म. पु. १४.६४

६५ को न मच्छति संतोषमुत्तरोत्तरबुद्धितः ?

म. पु. ७१.३६८

उपकार

६६ प्रणिपातावसानो हि कोधो विपुलचेतसात् ।

म. पु. २०.३५२

- मनुष्य की भाषा बहुत बड़ी होती है ।
- धर्मरूपी बंधु के द्वारा जीव भाषा के पात्र से मुक्त हो आते हैं ।
- विशिष्ट का आश्रय सबको विशिष्टता देता है ।
- मलिन होते हुए भी निरुपद्रवी अर्घीनों को सब आश्रय देते हैं ।
- जीव एक दिन के लिए भी ज्यों रहता है उससे उसकी प्रीति हो जाती है ।
- आश्रय के सामर्थ्य से मनुष्यों को सब कुछ मिलता है ।
- उत्तम सेवकों और मित्रों के सहयोग से इष्टसिद्धियां मिल जाती हैं ।
- संसार में समस्त इच्छाएं भिन्न हैं तथा दुःख का कारण हैं ।
- अन्तविहीन इच्छा को धिक्कार है ।
- सभी लोग मनोज्ञ विषय को ही चाहते हैं ।
- अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति होने पर सबको आनन्द होता है ।
- सेव है कि जीव, यम के बातों के बीच रहकर भी जीवित रहना चाहता है ।
- विजय के इच्छुक मनुष्य उपाय करते ही हैं ।
- अन्धरी तरह उन्नत हुआ व्यक्ति सबका आश्रय होता है ।
- अपनी उत्तरोत्तर उन्नति से सब प्रसन्न होते हैं ।
- उदारचित्तवालों का कोप विनतिपर्यन्त रहता है ।

- ६७ उदारा भवन्ति हि दयापराः । पा. पु. १२.१३१
- ६८ पापिमासुपकारोऽपि सुभुञ्जंयमायते । पा. पु. ४६.३१६
- ६९ अकारणोपकाराणामवश्यंभावि तत्फलम् । पा. पु. ७५.३६५
- ७० कथं हन्या उपकारकरा नराः ? पा. पु. १२.२६७
- ७१ समाधये हि सर्वोऽयं परिस्पन्धो हिताविनाम् । पा. पु. ११.७१
- ७२ भवेत्स्वार्था परार्थता । पा. पु. ५६.६५
- ७३ परोपकारवृत्तीनां पर वृत्तिः स्ववृत्तये । पा. पु. ५६.७७
- ७४ मुख्यं कर्म मनु कलेषु परोपकारः । पा. पु. ७६.५५४

#### कथा

- ७५ यत्कस्तु सत्कथाभम्भ भावज्जगत्कारकम् । पा. पु. १.२५
- ७६ यन्मास्त एव ये सास्तकवासंगमरञ्जिता । पा. पु. १.३२
- ७७ सा कथा यी समाकर्ष्य हेयोपादेयनिर्णयः । पा. पु. ७४.११

#### कलह

- ७८ कुटुम्बकलहो यत्र तत्र स्वास्थ्यं कुतस्तनय । पा. पु. १२.७४

#### काम

- ७९ कामग्रहमृहीतस्य का भयाया कमोऽपि कः ? पा. पु. १७.१५
- ८० को विवेको हि कामिनाम् ? पा. पु. ८.७८
- ८१ मारसेवा ■ वृष्टये । पा. पु. ८.६८
- ८२ कर्मणा कलितः कामी कुस्ते किं न दुष्करम् ? पा. पु. ७.२१८

- उदार मनुष्य दयालु होते ही हैं ।
- पापी पर (दुष्ट पर) उपकार करना साँप को दूध पिलाना है ।
- बिना कारण (निःस्वार्थ) किये गये उपकार अवश्य ही फलदायी होते हैं ।
- उपकार करनेवाले मनुष्य मारने योग्य नहीं हो सकते ।
- परोपकारी पुरुषों की सम्पूर्ण क्रियाएँ दूसरों की भलाई के लिए ही होती हैं ।
- परोपकार में स्वोपकार भी निहित है ।
- परोपकारी के लिए दूसरों की सन्तुष्टि ही अपनी सन्तुष्टि है ।
- सब फलों में परोपकार ही मुख्य फल है ।
- सत्पुरुषों की कथा से उत्पन्न वज्र जब तक अन्त्र, सूर्य और तारे हैं तब तक रहता है ।
- वात वही है जो शान्त कथाओं के सामागम से रंजित रहते ■ ।
- कथा वही है जिसके श्रवण से हेय और उपादेय का निर्णय होता है ।
- जिस परिवार में कलह हो वही स्वास्थ्य नहीं रह सकता ।
- कामी मनुष्य के लिए कोई मर्यादा और नियम नहीं होते ।
- कामी जनों को विवेक नहीं रहता ।
- काम सेवन से कभी तृप्ति नहीं होती ।
- कर्म के वश में होकर कामी जीव प्रत्येक दुष्कार्य कर सकता है ।

- ८३ का सज्जा कामिनां किल ? . . . . . प. पु. ८.८०
- ८४ न भूत्स्योति स्मरप्रस्तो न विप्रति न पश्यति । प. पु. ३६.२०८
- ८५ स्त्रीचित्तहरणोद्युक्ताः किं न कुर्वन्ति माम्बाः ? प. पु. ४१.६२
- ८६ कुशीलस्य विभवाः केवलं मलयः प. पु. ४६.६३
- ८७ हेयोपेयविवेकः कः कामिनां मुग्धचेतसाम् । म. पु. ४६.१४३
- ८८ कामिनां क्वान्तरजता ? म. पु. ४८.६६
- ८९ धिवकामं धर्मदूषकम् । म. पु. ४६.२७०
- ९० विद्या तपति तिग्मासुर्मदनस्तु विद्यामिसम् । प. पु. १०६.१०१
- ९१ चित्रं हि स्मरचेष्टितम् । प. पु. ४६.१८६
- ९२ समस्तरोगाणां भवमो मूर्ध्नि वर्तते । प. पु. १२.३४
- ९३ कामासक्तमतिः पापी न किञ्चिद् वेत्ति देहवान् । प. पु. ८३.५३
- ९४ ज्येष्ठो ध्यायितृहृन्नासां भवमो नतिसूदनः । पा. पु. १२.३३
- ९५ कश्माञ्चिदा परं बाहं ववन्ति कुत्सिता नराः प. पु. ३१.१३६
- ९६ परस्त्रीहरणं सत्यं दुर्गतेर्दुःखकारणम् । म. पु. ४६.१८४
- ९७ परस्त्रीसंगपकेन विग्धोऽकीर्तिः श्वेत्यराम् । प. पु. ७३.६०
- ९८ परदारभिलाषोऽप्यमयुक्तोऽतिभयंकरः । प. पु. ४६.१२६
- ९९ ये परदारिका दुष्टा निषाद्यास्ते न संशयः । प. पु. १०६.१५४

#### काय

- १०० धर्मसाधनमात्रं हि शरीरमिह देहिनाम् । ह. पु. १८.१४३
- १०१ गते प्राप्ते च भवेत्सुप्रभा तमोः । म. पु. ७२.६४



— कामी जनों को लज्जा नहीं होती ।

..... काम से अस्त मनुष्य न सुनता है, न सूँघता है और न देखता है ।

..... स्त्रियों का चित्तहरण करने में जबे हुए मानव सब कुछ कर सकते हैं ।

..... कुशील मनुष्य का वैभव केवल मल है ।

..... मोक्षस्त कामियों को हेयोपादेय का ज्ञान नहीं होता ।

..... कामी मनुष्यों को हिताहित का ज्ञान नहीं होता ।

..... धर्म को दूषित करनेवाले काम को धिक्कार है ।

..... सूर्य तो दिन में ही तपता है किन्तु काम दिन रात तपता रहता है ।

..... काम की चेष्टाई मिश्रित होती है ।

..... काम समस्त रोगों में प्रधान है ।

..... कामासक्त पापी व्यक्ति कुछ भी नहीं समझता ।

..... बुद्धि को नष्ट करनेवाला काम हजारों बीमारियों में सबसे बड़ी बीमारी है ।

..... क्षुद्र मनुष्य काम की ज्वाला से परम दाह को प्राप्त होते हैं :

..... सत्य है, पर स्त्री हरण दुर्मति के दुःख का कारण है ।

..... पर स्त्री कर्दम से लिप्त पुरुष की अपकीर्ति होती है ।

..... पर स्त्री की अभिलाषा अनुचित और अति भयंकर है ।

..... जो परस्त्री-लम्पट है वे अवश्य ही दण्ड के पात्र हैं ।

— इस संसार में देहचारियों की देह ही वर्म का पहला साधन है ।

— प्राण निकल जाने पर शरीर शोभाविहीन हो जाता है ।

१०२	देहोऽयमध्रुवः ।	प. पु. १३.७६
१०३	अलबुद्बुद्वत्कायः सारेण परिवर्तितः ।	प. पु. ५.२३७
१०४	सरब्धनइयाकस्माद्देहो नासं प्रपद्यते ।	प. पु. १०.१५६
१०५	अलबुद्बुद्वनिःसारं कष्टमेतच्छरीरकम् ।	प. पु. २६.७३
१०६	आमाश्वे नियतं देहे लोकस्यालम्बनं शुभा ।	प. पु. ११७.६
१०७	रोगोरगविलं कायम् ।	प. पु. ११.५
१०८	अल्पकालमिदं जन्तोः शरीरं रोमनिर्भरम् ।	प. पु. १२.५
१०९	रोगस्याधतमं देहम् ।	प. पु. ३६.१२४
११०	रोमोरगाणां तु शेषं शरीरं वामलूरकम् ।	प. पु. ५२.४६
१११	सर्वस्य साधनो देहस्तस्माद्धारः सुसाधनम् ।	प. पु. ६८.३५७

### कायश्च

११२	कापुष्पा एव स्तलमिति प्रस्तुतागमात् ।	प. पु. ७.२८०
११३	कातरस्य निषादीऽस्ति ।	प. पु. १०.७३

### कार्य/कारण

११४	कर्मकमेव संसारे शस्यते धर्मकारणम् ।	प. पु. ८६.६८
११५	यद्यथा निर्मितं पूर्वतद्योग्यं जायतेऽप्युना ।	प. पु. ४६.१४२
११६	कलति कलं स्वकर्म जगतां हि यथाविहितम् ।	प. पु. ४६.१७
११७	आशते विफलं कर्मप्रेक्षापूर्वककारिणाम् ।	प. पु. १२.१६५
११८	नामोपलब्धिमात्रेण कार्यसिद्धिः किमिष्यते ?	प. पु. ७३.१२०
११९	निश्चित्य विहिते कार्ये लभन्ते प्राणिनः सुखम् ।	

- यह शरीर अनित्य है ।
- शरीर पानी के बुबुले के समान सारहीन है ।
- शरत्कालीन बादल के समान देह अकस्मात् ही नष्ट हो जाती है ।
- "यह शरीर पानी के बुबुले (बुलबुले) के समान निःसार है ।"—यह बात बड़े कष्ट की है ।
- इस मरणशील शरीर के लिए शोक करना व्यर्थ है ।
- शरीर रोगरूपी साँप का बिजह है ।
- रोगों से भरा प्राणियों का यह शरीर अल्पकालीन है ।
- शरीर रोगों का घर है ।
- यह शरीर रोगरूपी सर्पों का घर है ।
- सबका साधन शरीर है और शरीर का साधन धातु है ।
- कायर धुल्ल ही अपने प्रकृत अर्थ से भ्रष्ट होते हैं ।
- कायर को विषाद होता है ।
- संसार में धर्म का कारण कर्म ही प्रवृत्ति योग्य है ।
- जीव पूर्वभ्रम में किये कार्य के अनुसार ही जन्म लेता है ।
- जगत् में जो ऐसा करता है वैसा भरता है ।
- बिना विचारे कार्य करनेवालों का कार्य विफल हो जाता है ।
- नाम की उपलब्धि मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं होती ।
- विचारपूर्वक किये हुए कार्य से प्राणियों को सुख मिलता है ।

- १२० तत्कार्यं बुद्धिमुक्तमेव परब्रह्म च यत्सुखम् । प. पु. ७३.१०४
- १२१ सहस्रारम्यमाणं हि कार्यं जनति संशयम् । प. पु. ३७.६७
- १२२ तत्कृत्यं भीमतां येन ह्रीहामुत्र सुखं यतः । न. न. ५.१०
- १२३ अनाप्यं किं सद्यमुक्तानसत्परं ? म. पु. ५४.१२१
- १२४ यथाम्यवत्सतां चेष्टा विरचलोकसुखप्रदा । म. पु. ४६.५४
- १२५ अकृतोत्तमकर्माणो याप्ति मृत्युं निरर्थकाः । प. पु. ७.४२१
- १२६ आत्मार्थं कुर्वतः कर्म सुमहामुक्तसाधनम् । प. पु. ४६.७७
- १२७ पुण्यातिर्लभनं प्राहुर्मयमासुमावहम् । म. पु. ४४.३६
- १२८ अस्तमस्कीतिकरं सिद्धेतरम् । प. पु. १२३.१७१
- १२९ दुष्कार्ये कीं न मुह्यति ? म. पु. ४४.६०
- १३० अनालोचितकार्याणां किं सुखवाम्यत् पराभवम् ? म. पु. ७१.४७४
- १३१ अनिकषितकार्याणां नेह नामुत्र सिद्धयः । म. पु. ३४.२५
- १३२ न किञ्चिदप्यनस्तीक्य विधेयं सिद्धिकाम्यता । म. पु. २८.१४३
- १३३ अकालसायनं शीर्यं न फलाय प्रकल्पते । म. पु. ७५.५८०
- १३४ बुद्धिनिवेशरो यस्य न निर्बन्धः फलस्यसौ । म. पु. ४६.६१
- १३५ अस्मभार्यं गते गेहे कूपस्तानममो मृषा । प. पु. ४६.६६
- १३६ प्रदीप्ते भवने कीदृक् तदावसमनादरः ? प. पु. ८६.१०२

- बुद्धिमान् मनुष्य को इस लोक और परलोक में सुखदायी कार्य करता चाहिये ।
- सहसा आरंभ किया हुआ कार्य संशय में पड़ ही जाता है ।
- बुद्धिमानों के लिए वही करणीय है जिससे इस लोक और परलोक में सुख और यज्ञ प्राप्त हो ।
- सत्कार्य करने में तत्पर मनुष्यों को सब सुलभ है ।
- सत्पुरुषों की चेष्टा मेघ के समान सब लोगों को सुखप्रद होती है ।
- जिन्होंने उत्तम कार्य नहीं किये हैं वे व्यर्थ ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं ।
- आत्मा के लिए करनेवाले का कर्म महासुख का साधन होता है ।
- पूज्य पुरुषों का उल्लेखन दोनों लोकों में अनुभूतकारक कहा गया है ।
- बुरा कार्य कष्टों की वृद्धि करता है ।
- बुरे कार्यों में सब मोहग्रस्त हो जाते हैं ।
- बिना विचारे किये कार्य का फल पराभव के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता ।
- बिना विचारे कार्यों से न तो इस लोक में और न परलोक में सिद्धि होती है ।
- सफलता के इच्छुक पुरुष को बिना विचारे कुछ भी नहीं करना चाहिये ।
- प्रतिकूल समय में प्रकट की हुई धूरता फलदायी नहीं होती ।
- बुद्धिहीन प्रवृत्ति कभी सफल नहीं होता ।
- घर के अस्म हो जाने पर रूप खुदाने का अर्थ व्यर्थ है ।
- घर में भाग्य लग जाने पर तालाब खोदने से कोई लाभ नहीं ।

१३७ अस्मत्कारणभूतीनां क्लेशावन्यत् कुतः कसम् । म. पु. ६८. १८०

१३८ तबहुत्पतरं येन निन्दा दुःखं परमवम् । य. ख. ५. १०

१३९ फलस्यकार्यधर्माणां दुःसहा दुःखसंततिम् । म. पु. ६५. ११३

१४० आयोजनर्वा बहुत्वगाः । य. पु. ४४. १४६

१४१ कारणेन विना कार्यं न कदाचित् प्रजायते । ह. पु. ७. ११

१४२ कारणे सति कार्यस्य किं हानिर्दृश्यते क्वचित् । म. पु. ४४. ११५

१४३ न कारणाहिमा कार्यनिष्पत्तिरिह जायते । म. पु. ५. १७

१४४ हेतुना न विना कार्यं । य. पु. १५. ६६

१४५ न कार्यं बीजवर्जितम् । य. पु. २५. १५४

१४६ कारणाग्र विना कार्यम् । म. पु. ६. २१

१४७ क्वचित्कदाचित्किं जायते कारणाहिता ? म. पु. ७६. ३८०

काव्य

१४८ कविरेव कवेर्वैति कामं काव्यपरिधमम् । म. पु. ४३. २४

१४९ कवित्वे का वरिद्रता ? म. पु. १. १०१

क्रोध/क्षमा

१५० प्रतिशब्देषु कः क्रोधः ? य. पु. ६६. ५४

१५१ न प्रसादयितुं शक्यः क्रुद्धः क्षीघ्रं नरेश्वरः । य. पु. ४४. ६६

१५२ क्रोधोऽपि सुखवः क्वचित् । म. पु. ६८. १३८

१५३ क्रोधोऽपि क्वाऽपि क्रोधोपलेपनापमुदे मतः । म. पु. ६३. २५४

— अशक्य कार्यों को प्रारंभ करनेवाले मनुष्यों को क्लेश ही मिल सकता है ।

— वही कार्य अकृत्य है जिससे निन्दा, दुःख और पराभव हो ।

— अकार्य में प्रवृत्ति करनेवाले दुःसह्य दुःख संतति को प्राप्त होते हैं ।

— धनार्थ प्रायः अनेक रूपों में पाते हैं ।

— कार्य की उत्पत्ति कभी भी कारण के बिना नहीं होती ।

— कारण के रहते हुए कार्य की हानि नहीं होती ।

— इस संसार में कारण के बिना किसी भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती ।

— कारण के बिना कार्य नहीं होता ।

— कारण के बिना कोई कार्य नहीं होता ।

— कारण के बिना कार्य नहीं होता ।

— बिना कारण के कभी कोई कार्य नहीं होता ।

— कवि ही कवि के काव्यसृजन के परिणाम को जान सकता है ।

— कविता करने में दरिद्रता नहीं बरतनी चाहिए ।

— सुनी सुनाई बात पर क्रोध करने से कोई लाभ नहीं ।

— कुपित आसक्त को शीघ्र प्रसन्न करना संभव नहीं है ।

— कभी कभी क्रोध भी सुखदायी होता है ।

— कभी कभी क्रोध से भी क्रोध दब जाता है ।

१५४	क्रोधः करोति मोहान्धमपि दीक्षामुपाश्रितम् ।	प. पु.	३१.१६७
१५५	भवेत्क्रोधावधोगतिः ।	प. पु.	७५.१२६
१५६	न हि प्रियजने क्रोधः सुधिरं किस सोमते ।	प. पु.	७७.४३
१५७	परलोकजिगीषूणां क्षमा साधनमुत्तमम् ।	म. पु.	३४.७७
१५८	अजया किं न जायते ?	म. पु.	४६.२५२

### कृतज्ञता/कृतस्मृता

१५९	कृतं परेषाण्युपकारयोगं, स्मरन्ति नित्यं कृतिको मनुष्याः ।	प. पु.	४९.११८
१६०	कृतोपकारिणे देयं किं न तत्कृतबेदिभिः ।	म. पु.	७०.२७८
१६१	असम्भाव्यः सतां नित्यं भोजकस्तत्रोत्तराधमः	प. पु.	४९.६४

### गुरु/गुरुभक्ति

१६२	विद्यालाभो गुरोर्ब्रह्मात् ।	ह. पु.	९.१३०
१६३	उपदेशं ब्रह्मवाचे गुरुर्याति कृतार्थताम् ।	ह. पु.	१००.५२
१६४	किं न स्माद् गुरुसेवया ?	ह. पु.	९.१४१
१६५	गुरो भक्तिस्तु कामदा ।	पा. पु.	१०.३०

### गुरा/गुरी

१६६	स्वभावः सखु गुरुर्यवः ।	प. पु.	२८.१४६
१६७	भवेत्स्वभावो न ह्येकः कसहंसवकीर्णोः ।	पा. पु.	७.१००
१६८	गुरुजता जगत्पूजया गुरी सर्वत्र मन्यते ।	पा. पु.	२.६६
१६९	गुरोरावर्ज्यते न कः ?	म. पु.	११.३६
१७०	गुरा हि गुणतां यान्ति बुध्यमानाः परानमैः ।	प. पु.	७३.७४



- क्रोध दीक्षित साधु को भी मोहान्व बना देता है ।
- क्रोध से अचोगति होती है ।
- श्रियजनों पर अधिक समय तक के लिए क्रोध करना अच्छा नहीं है ।
- परसोक सुचारने के लिए क्षमा उत्तम साधन है ।
- क्षमा से सब कुछ हो सकता है ।
- कृतज्ञ मनुष्य दूसरे के द्वारा किये हुए उपकार का निरन्तर स्मरण रखते हैं ।
- कृतज्ञजनों द्वारा अपने उपकारी को सब कुछ देय है ।
- कृतघ्न सत्पुरुषों से बार्तालाप करने योग्य नहीं है ।
- विद्या की प्राप्ति गुरु से ही होती है ।
- पात्र को उपदेश देनेवाला गुरु कृतकृत्य हो जाता है ।
- गुरुसेवा से सब कुछ हो सकता है ।
- गुरुभक्ति इष्ट फल देती है ।
- स्वभाव कठिनाई से झूटता/बदलता है ।
- कलहंस पक्षी और बगुले का स्वभाव एकसा नहीं होता ।
- गुणज्ञता संसार में पूज्य है और गुणों का सब जगह सम्मान होता है ।
- गुणों से सभी बन्धीभूत हो जाते हैं ।
- दूसरो द्वारा प्रशंसित गुण ही गुण कहलाते हैं ।

- १७१ अत्युन्नतगुणः कद्रुः श्लाघनीयो विपरिजताम् । प. पु. ७८.२६
- १७२ दोषान् गुणान् गुणी गृह्णान् गुणान् दोषांस्तु  
दोषवान् । म. पु. ४३.२०
- १७३ वीप्सं हि भूयसां नैव भूयजान्तरमोक्षते । म. पु. २५.१६
- १७४ गुणाधिको हि मान्यः स्याद् वन्द्यः पूज्यश्च सत्तमैः ।  
म. पु. ४०.२०४
- १७५ गुणाधिको हि लोकेऽस्मिन् पूज्यः स्यात्लोकपुजितैः ।  
म. पु. ४०.१८५
- १७६ स्तम्भमिति न विधातज्जे बनेऽपि शुभिनो जनाः । प. पु. १७.३५७
- १७७ गुणोत्कटा न संसृजति धीराः स्वं स्वयमुत्तमाः । प. पु. ५३.६१
- १७८ गुणा गुणाधिभिः प्राध्व्याः । म. पु. ४८.५
- १७९ गुणितभावं गुणो भवेत् । प. पु. २.६७
- गृह्यम्
- १८० ममिनस्त्वं गृही याति शुक्लाशुकमिव स्थितम् । प. पु. ११०.७५
- १८१ गृह्यंजरकं मूढाः लेखन्ते न प्रबोधिनाः । प. पु. ११०.७३
- १८२ कामक्रोधादिपूरास्य का मुक्तिर्गृहितेभिनः ।  
धरिणः प. पु. ३१.१३५
- १८३ कायवाक्चेतसां वृत्तिः शुभा हितविधायिनी । प. पु. १७.१७८
- १८४ कुराकाराजितं पापं सञ्चरित्रेण नश्यति । म. पु. ७२.४६
- १८५ क्षारित्रेण न तेनार्को येन नात्महितोद्भवः । प. पु. ६७.२८
- १८६ स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये । प. पु. ५६.३३

- विद्वान् उत्कृष्ट गुणवाने शत्रु की भी प्रशंसा करते हैं ।
- गुणी पुरुष दोषों को गुणरूप से और दुष्ट लोग गुणों को भी दोषरूप से ग्रहण करते हैं ।
- स्वयं ईदोपमान आभूषण को दूसरे आभूषणों की अपेक्षा नहीं होती ।
- गुणों की अधिकता से ही पुरुष सत्पुरुषों द्वारा मान्य और पूज्य होता है ।
- इस संसार में अधिक गुणवान् पुरुष लोक पूजित पुरुषों द्वारा भी पूजा जाता है ।
- गुणीजन जन में भी करने योग्य कार्य से नहीं श्रुक्ते ।
- गुणवान्, उत्तम, धीर पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते ।
- गुणार्थी गुणों की कामना करते हैं ।
- गुणियों की संगति से गुण प्रकट होते हैं ।
- गृहस्थ पड़े हुए सुमल वस्त्र के समान मलिनता को प्राप्त हो ही जाता है ।
- गृहस्थी पिण्डों को भूलें मनुष्य ही पसन्द करते हैं, बुद्धिमान् नहीं ।
- काम और क्रोध आदि से पूर्ण गृहस्थ की मुक्ति नहीं हो सकती ।
- मन, वचन, काय की शुभ प्रवृत्ति ही हितकारिणी है ।
- दुराचार से कमाया हुआ पाप सञ्चरित्र से नष्ट हो जाता है ।
- वह चरित्र जिससे आत्मा का हित न हो, व्यर्थ है ।
- मनुष्य का अपना चरित्ररूपी सूर्य ही उसे आत्म सुधार के लिए प्रेरित करता है ।

## चिन्ता

- १८७ चिन्ताया घोहि नश्यति । पृ. पु. १२.२७६
- जिनशासन
- १८८ शासनस्य जिनेन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । पृ. पु. ३०.४७
- १८९ जिनशासनमेतद्धि सरसं परमं मतम् । पृ. पु. १०४.७०
- शोधन-मृदु
- १९० जीवितं ननु सर्वस्मादिष्टं सर्वसरीरिणाम् । पृ. पु. १५.१२७
- १९१ यथा स्वजीवितं कामं सर्वेषां प्राणिनां तथा पृ. पु. ५.१२८
- १९२ विद्युत्सत्तावित्तासेन सर्वतः जीवितम् अत्यम् । पृ. पु. ५.२३७
- १९३ जीवितं स्वप्नसंनिभम् । पृ. पु. ८३.४८
- १९४ करिबालककर्णाभ्यः अपतन् ननु जीवितम् । पृ. पु. ३६.११३
- १९५ जीवितं बुद्बुधोपमम् । पृ. पु. २१.११५
- १९६ समस्तेभ्यो हि अस्तुभ्यः प्रियं जनति जीवितम् । पृ. पु. ३८.६६
- १९७ अलुः पद्मपुद्गासङ्ग-अधिकं ननु जीवितम् । पृ. पु. ८.२२६
- १९८ जातानां हि समस्तानां जीवानां नियता मृतिः पृ. पु. ५१.२०
- १९९ मरणात्परमं दुःखं न लोके विद्यते परम् । पृ. पु. ७२.६०
- २०० जातेनाश्वश्वमर्तभ्यमत्र संसार-पञ्चरे । पृ. पु. ११७.८
- २०१ प्रतिक्रियाऽस्ति नो मृत्योरुपायैर्बन्धिषेरपि । पृ. पु. ११७.८
- २०२ अनन्यापि समाश्लिष्टं मृत्युर्हरति देहिभम् । पृ. पु. ११७.२८
- २०३ मृत्युः प्रतोक्षते नैव ज्ञानं तरुणमेव वा । पृ. पु. ३१.१३३
- २०४ सर्वतो मरणं दुःखमन्यस्माद्दुःखतः परम् । पृ. पु. २६.२६

- चिन्ता से बुद्धि नष्ट हो ही जाती है ।
- ग्रहो ! जिनशासन का बड़ा माहात्म्य है ।
- जिनशासन ही परम शरण है ।
- निश्चय ही प्राणियों को अपना जीवन सबसे अधिक प्रिय होता है ।
- जैसे हमें अपना जीवन प्यारा (प्रिय) है वैसे ही (अन्य) सब प्राणियों को भी ।
- जीवन बिजली की चमक के समान चंचल है ।
- जीवन स्वप्न के समान है ।
- जीवन हस्ति-शिखु के कानों के समान चंचल है ।
- जीवन पानी के बुलबुलों के समान है ।
- संसार में समस्त वस्तुओं से जीवन ही प्यारा होता है ।
- जीवन मेजों की टिमकार के समान क्षणभंगुर है ।
- उत्पन्न हुए समस्त जीवों का मरण निश्चित है ।
- संसार में मरण से बढ़कर दुःख नहीं है ।
- संसाररूपी पिजड़े के भीतर उत्पन्न हुए का मरण अवश्यभावी है ।
- अनेक उपायों के द्वारा भी मृत्यु का प्रतिकार नहीं किया जा सकता ।
- माता से आश्लिष्ट प्राणी को मृत्यु हर लेती है ।
- मृत्यु बालक अथवा तरुण की प्रतीक्षा नहीं करती ।
- सब दुःखों में मरणदुःख सबसे बड़ा दुःख है ।

२०५	जस्तस्य नियतो मृत्युः ।	प. पु. ३०.११३
२०६	मूर्धोपकण्ठदत्ताद्भिर्मृत्युः कालमुदीक्यते ।	प. पु. १११.१४
२०७	बलबद्धम्यो हि सधम्यो मृत्युरेव महाबलः ।	प. पु. ५.२६८
२०८	केनापि हेतुना किंवा न मृत्योर्हेतुता वचेत् ?	म. पु. ४८.६१
२०९	आसन्नमृत्युर्ना मवेत्प्रकृतिधमः ।	प. पु. ६८.५३०

२१०	नाकाले भ्रियते कस्मिंश्चिज्जापि समाहृतः ।	प. पु. ४६.१५
२११	मृत्युकालेऽमृतं जन्तोर्विवर्ता प्रतिपद्यते ।	प. पु. ४६.१५

### ज्ञान-प्रज्ञान

२१२	विद्या सत्यस्य भिन्नं च विद्या सत्यानकारिणी	म. पु. १६.१०१
२१३	सम्यगाराधिता विद्या वैभवा कामदायिनी ।	म. पु. १५.२६
२१४	विद्याकामबुहा धेनुः ।	म. पु. १५.१००
२१५	विद्या चिन्तामणिर्नानाम् ।	म. पु. १५.१००
२१६	भित्तर्जकलितां सूते विद्या सत्यस्यरम्यराम् ।	म. पु. १५.१००
२१७	विद्या यशस्करी पुंसां ।	म. पु. १६.२६
२१८	विद्या श्रेयस्करी मता ।	म. पु. १६.२६
२१९	विद्या सर्वार्थसाधिनी ।	म. पु. १६.१०१
२२०	सह्यायि धनं विद्या ।	म. पु. १६.१०१

- जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु नियत है ।
- अस्तक पर खड़ा हुआ काल अवसर की प्रतीक्षा करता है ।
- मृत्यु सभी बलवानों से अधिक बलवान है ।
- मृत्यु का कारण कोई भी हो सकता है ।
- जिनकी मृत्यु निकट आ जाती है उनके स्वभाव में विभ्रम विकार हो जाता है ।
- जब तक मृत्यु का समय नहीं आता तब तक बन्ध से भाइत होने पर भी नहीं भरता ।
- जब मृत्युकाल आ जाता है तब अमृत भी बिष हो जाता है ।
- विद्या (ज्ञान) मनुष्यों की बंधु है, मित्र है और कल्याण करने वाली है ।
- अन्धी तरह से आराधित विद्या-देवता मनोरथों को पूर्ण करने वाली होती है ।
- विद्या कामधेनु है ।
- विद्या मनुष्यों के लिए चिन्तामणि के समान है ।
- विद्या से विवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) रुपी सम्पदा उत्पन्न होती है ।
- विद्या मनुष्यों की महादात्री है ।
- विद्या कल्याणकारी मानी गई है ।
- विद्या सब प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली होती है ।
- विद्या साथ जाने वाला घन है ।

२२१	प्रकाशनाद्वि पञ्चस्य दूरावस्थ-समंवरम् ।	पा. पृ.	५.६४
२२२	गृहीत्वा त्यज्यते यच्च प्राक् तस्यात्प्राहरणं वरम् ।	पा. पृ.	५.६३
२२३	सर्वबुद्धिः सिद्धिदायिनी ।	म. पृ.	५४.२९३
२२४	बोधिरेका सुदुर्लभा ।	प. पृ.	११६.१०५
२२५	दुर्लभा बोधिरत्नमा	प. पृ.	३२.६८
२२६	स्वित्तं ज्ञानस्य साक्षाज्ज्ञे केवलं परिणीत्यते	म. पृ.	१४.६७
२२७	ज्ञानेन ज्ञायते विश्वं धर्मपापं हिताहितम् ।	म. म.	१८.१३
२२८	ज्ञानेन तेन किं येन ज्ञातो नाप्यवस्थगोचरः ।	प. पृ.	६७.३६
२२९	ज्ञानममृतपूनां लघो विष्णुसमं धत्ते ।	म. पृ.	६८.२६३
२३०	मूर्तं विनाशकाले हि मूर्ता ध्वाम्नायते मतिः ।	म. पृ.	७७.५२
२३१	अज्ञानेन कृतं पापं मत्तज्ज्ञानेन मुच्यते ।	म. म.	१०.६३
२३२	न मुह्यति प्राप्तकृती कृती हि ।	म. पृ.	३५.६३
२३३	पीयूषे हि करस्वेऽहो के भजन्ते किञ्च बुधाः ।	पा. पृ.	२५.१५५
२३४	प्राप्य चिन्तामणिं कावे को रतिं कुरुते पुमान् ?	पा. पृ.	२५.११६
२३५	मुधा बुधा न कुर्वन्ति किञ्चिद्व्यं कामवाञ्छया ।	पा. पृ.	६.४६
२३६	उपायेहि प्रवर्तन्ते स्वार्थस्य कृतबुद्धयः ।	प. पृ.	११७.६
२३७	विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदेः ।	म. पृ.	१६.६८
२३८	हृतं विनिर्गतं नष्टं न शोचन्ति विचक्षणाः ।	प. पृ.	३०.७२



- कीचड़ लगाकर उसे थोड़े जी अग्रेला नीचड़ को न मृदा ही प्रशस्ती है ।
- ग्रहण करके जो वस्तु छोड़नी पड़ती है उसको पहले ही छोड़ देना उत्तम है ।
- सद्बुद्धि सिद्धि-शायक होती है ।
- बोधि ही अत्यन्त दुर्लभ है ।
- उत्तमबोधि दुर्लभ है ।
- केवलज्ञान सब प्रकार के ज्ञानों से श्रेष्ठ है ।
- ज्ञान के द्वारा ही सर्व अर्थ-अधर्म और हित-अहित की परीक्षा संभव है ।
- उस ज्ञान से कोई लाभ नहीं है जिससे अध्यात्म का ज्ञान न हो ।
- मरणासन्न व्यक्ति की बुद्धि मीघ ही नष्ट हो जाती है ।
- विनाश के समय मनुष्यों की बुद्धि अश्वत्थारमय हो जाती है ।
- अज्ञान से किया गया पाप ज्ञान से छूट जाता है ।
- कुशल मनुष्य अक्सर पाकर नहीं चूकता ।
- प्रसृत हाथ में होने पर बुद्धिमान् विष-मेवन नहीं करते ।
- चिन्तामणिरत्न के प्राप्त होने पर कोई भी काच से प्रेम नहीं करता ।
- बुद्धिमान् कामेच्छा से व्यर्थ पाप नहीं करते ।
- कुशलबुद्धि मनुष्य आत्महित के उपायों में ही प्रवृत्ति करते हैं ।
- सभी कुशल व्यक्ति लोक में विद्यावान् का सम्मान करते हैं ।
- चतुरजन हरण किए हुए, खोये हुए और नष्ट हुए का शोक नहीं करते ।

२३६	को नास्म स्पृहयेद्भीमान् भोगान् पर्यन्ततापिनः ।	म. पु. १८.११३
२४०	शीतार्तः को न कुर्वति सुधीरातप सेवनम् ।	म. पु. ११.६३
२४१	संसन्ति निश्चिते कृत्स्ने कृतज्ञाः क्षिप्रकारिणाम् ।	म. पु. ६८.४३८
२४२	अरुणवर्णाग्निशङ्खी शेषं मोयेक्षते कृत्सी ।	म. पु. १४.४८
२४३	प्रयोजनवशात् प्राज्ञैः प्रास्तोऽपि परिमुह्यते ।	प. पु. ४१.२६६
२४४	प्राज्ञा हि क्लमयेन्निरः ।	म. पु. ७३.१९३
२४५	प्राज्ञैः कोको न धार्यते ।	प. पु. ४८.१५५
२४६	आप्तो मुक्तिविधिना हि विदुषामर्थदेवता ।	प. पु. ४८.१५८
२४७	महत्प्राप्तिसिद्धे कर्मभयनाजः कः परिस्मरते ।	म. पु. १.११३
२४८	अरिर्गदस्य आत्मज्ञः प्रादुर्भावमिच्छेन्नमम् ।	म. पु. ६९.११६
२४९	कदापि कोपो न भीमताम् ।	म. पु. ६३.१२६
२५०	आत्मवत्तां चित्तमात्मभ्यसि रज्यते ।	म. पु. १०.१९४
२५१	सर्वजगुर्जः यत्तेस्कूपे तस्य अक्षुनिरर्थकम् ।	व. म. १०.६२
२५२	प्राप्य ब्रह्मार्थं ब्रूतः को नात्रात्रावमभ्यते ?	म. पु. ७५.५०६
२५३	किं वा दुष्करं मूढचेतसान् ।	म. पु. ६७.४३
२५४	नमत्यज्ञोऽपि कं क्षतः ।	म. पु. ३१.१३६
२५५	अज्ञानेन हि अन्तूनां भवत्येव दुरोहितम् ।	प. पु. ११.३०५
२५६	ज्ञानहीनो न जानाति हेमादेयं मुक्तावुषम् ।	व. म. १८.१६

- कोई भी बुद्धिमान् अन्त में सन्तापदायी सोचों को नहीं चाहता है ।
- बुद्धिमान् भीत से पीड़ित होने पर धूप का सेवन करता ही है ।
- बुद्धिमान् निश्चित किए हुए कार्य में जोधता करने की प्रशंसा करते हैं ।
- ऋण, धान, यन्त्र और जन्तु के जेब भाग की बुद्धिमान् उपेक्षा नहीं करता ।
- बुद्धिमान् हटाये हुए पुरुष को भी अपने प्रयोजनवश फिर स्वीकार कर लेते हैं ।
- बुद्धिमान् मार्ग के जानने वाले होते हैं ।
- बुद्धिमान् झोक नहीं करते ।
- धर्म प्रकट करने में विद्वानों की वक्त्र-योजना निश्चित होती है ।
- महापुरुषों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने वाला जानी मार्ग से स्थलित नहीं होता ।
- आत्मज्ञानी शत्रु और रोग को उत्पन्न होते ही नष्ट कर देते हैं ।
- बुद्धिमान् किसी पर भी क्रोध नहीं करते ।
- आत्मज्ञानियों का चित्त आत्मकस्याण में ही अमुरक्त रहता है ।
- घास के होते हुए भी जो आदमी कुए में गिर आय उसकी घास निरर्थक है ।
- बूझासण को चाकर कोई मूर्ख भी उसका तिरस्कार नहीं करेगा ।
- मूर्ख मनुष्यों के लिए कुछ भी कठिन नहीं है ।
- अज्ञानी अधिक दुःखी किए जाने पर ही नभीभूत होते हैं ।
- अज्ञानवश जीवों से स्रोटे काम हो ही जाते हैं ।
- ज्ञानहीन व्यक्ति हेय-उपादेय, मुख-अवगुण को नहीं पहचानता ।

## तप

२५७	सास्त्रव्यसनमन्येषां व्यसमानो हि बाधकम् ।	ह. पु. २१.३६
२५८	स्वाध्यायः परमं तपः ।	ह. पु. १.६६
२५९	ज्ञानहीनपरिवर्त्तसो भाविदुःखस्य कारणम् ।	म. पु. ७३.११४
२६०	तपसा सञ्जते दिवम् ।	म. पु. ११०.५०
२६१	अना निस्तपसोऽन्यत्वं प्राप्नुवन्ति कलौदयम् ।	प. पु. ८५.१७०
२६२	यत्नाभा हि समस्तानां स्थितं मूर्ध्नि तपोवत्तम् ।	प. पु. ११.६२
२६३	लोकत्रयेऽपि तज्जास्ति तपसा यन्न साध्यते ।	प. पु. १३.६५
२६४	तपः वरमबुधकरम् ।	प. पु. १०७.२६
२६५	ज्ञानस्य साफल्यं तेषां ये चरन्ति तपोऽनघम् ।	व. च. १०.६६
२६६	हावसाभ्यस्तपोभ्योऽनस्तपो नावधार्यकरम् ।	व. च. १८.६
२६७	तपो हि अम उच्यते ।	प. पु. ९.२११
२६८	न दिनव्यभिच कर्माणि जनानां तपसा जिनाः ।	प. पु. ५६.३१
२६९	सुखं हि तपः क्षुते महत्कृतम् ।	म. पु. ३४.२१४
२७०	तपो हि फलतीप्सितम् ।	म. पु. ६.६३
२७१	ज्ञानं हि तपसो मूलं ।	म. पु. ३६.१४८
२७२	नैव धारयितुं शक्यास्तपस्तेजोतिरुर्गमाः ।	म. पु. २६.१०३

## तेज

२७३	कस्य तेजसो वृद्धिः स्वामिण्यापद्यमानते ?	प. पु. २.२०२
-----	--	--------------

- शास्त्र का व्यसन अन्य व्यसनों का बाधक है ।
- स्वाध्याय ही परम तप है ।
- अज्ञानी का तप भावी दुःख का कारण है ।
- तपसे स्वर्ग मिलता है ।
- तप नहीं करने वाले संसार में कर्म का फल अवश्य भोगते हैं ।
- समस्त बलों में तपोबल श्रेष्ठ है ।
- तीनों लोकों में ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जो तप से सिद्ध नहीं हो सके ।
- तप प्रतिदुष्कर होता है ।
- ज्ञान का सफल उन्हीं को मिलता है जो निर्मल तप का प्राचरण करते हैं ।
- द्वादशतपों ■ पतिरिक्त अन्य कोई तप पापों का क्षयकारी नहीं है ।
- तप ही श्रम कहा जाता है ।
- तप के बिना मनुष्यों के कर्म मष्ट नहीं होते ।
- शुद्ध तप के परिणाम महान् होते हैं ।
- तप से अभीष्ट सिद्धि होती है ।
- ज्ञान ही तप का मूल (प्राधार) है ।
- तप के तेज के कारण अत्यन्त दुर्गेम महात्माओं को रोक नहीं जा सकता ।
- स्वामी के विपद्यस्त होने पर किसी के भी तेज की वृद्धि नहीं हो सकती ।

२७४	प्रायस्तेजस्विसंपर्कस्तेजः पुष्पाति तादृशम् ।	म. पु. २३.६१
२७५	स्त्रियन्ते न सहन्ते हि परिभृति सतेजसः ।	म. पु. ४४.१६७
त्याग		
२७६	महतां हि ननु त्यागो न मतेः सेवकारस्यम् ।	म. पु. १४.२५७
२७७	त्याग एक परं तपः ।	म. पु. ४२.१२४
२७८	त्यागो हि परमो धर्मः ।	म. पु. ४६.१२४

### वया

२७९	वीणाम् हृष्ट्या हि कस्यात्र वया नो जायते सखु?	वा. पु. २.१४३
२८०	विष्णीष्यं सुदयातिमम् ।	वा. पु. १२.१०७
२८१	वर्मः प्राणिवया ।	ह. पु. १७.१६४
२८२	किं न कुर्मन्ति कृष्णेन सुहृदो हिताः ।	म. पु. ७५.४४३
२८३	वर्मस्य हि वया मूलम् ।	म. पु. ६.२८६
२८४	हितं करोम्यसौ त्वस्य मूलानां धी वयापरः ।	म. पु. २३.१०२
२८५	वयामूलो भवेद्धर्मः ।	म. पु. ५.२१
२८६	न किं वा सवनमुपहात् ?	म. पु. ९२.४७४
२८७	निर्वयानां हि का त्रया ?	वा. पु. १२.२०१

### दान

२८८	जीविताभ्यरणं श्रेष्ठं विना दानेन वेदिनाम् ।	म. पु. १७.६
२८९	वामास्त्रि नाप्यते ?	म. पु. १३.६७
२९०	दानतः सातप्राप्तिः ।	म. पु. १२३.१०८
२९१	दानेर्भोगस्य सम्भवः ।	म. पु. १२३.१०७

- तेजस्वी जनों के संसर्ग से लोभों का तेज प्रायः बढ़ता ही है ।
- तेजस्वी पुरुष मर जाते हैं परन्तु पराभव सहन नहीं करते ।
- त्याग महापुरुषों की बुद्धि की खिन्नता का कारण नहीं ही होता ।
- त्याग ही परम तप है ।
- त्याग ही परम धर्म है ।
- इस संसार में हीनों को देखकर तत्काल मन में दया उत्पन्न होती है ।
- दयारहित जीवन को विषकार है ।
- जीवों पर दया करना धर्म है ।
- सहृदय व्यक्ति कष्ट में पड़े हुए जीवों का हित करते ही हैं ।
- धर्म का मूल दया ही है ।
- प्राणियों पर दया करने में तत्पर रहने वाला अपना ही हित करता है ।
- दया धर्म का मूल है ।
- सज्जनों के अनुग्रह से सब कुछ होना सम्भव है ।
- निर्दयी को लज्जा नहीं होती ।
- प्राणियों के दया रहित जीवन से मरण अंष्ट है ।
- दान से सब कुछ मिलता है ।
- दान से सुख की प्राप्ति होती है ।
- दान से भोग सम्पत्ति (भोग सामग्री) प्राप्त होती है ।

२६२	सध्वस्य च पुनर्दानं संतति सुमहाफलम् ।	प. पु. ४८. १७२
२६३	विना हि प्रतिदानेन महती जायते त्रया ।	म. पु. ६०. ८७
२६४	त्यागादिह यशोलभः ।	म. पु. ४२. १२४
२६५	अधिनो का मुक्तामुक्तविचारणा ?	म. पु. १८. १०६
२६६	ऐश्वर्यं पात्रदानेन ।	म. पु. ११०. ५०
२६७	पात्रे दत्तं सुखाय हि ।	ग. पु. ७. ६३
२६८	पात्रदानमहो दानम् ।	प. पु. ५६. १६४
२६९	पात्रदानात्परं दानं न च अयोग्यनिबन्धनम् ।	व. न. १५. ७
३००	जायते ज्ञानदानेन विज्ञानं सुखसाधनम् ।	प. पु. ३२. १५६
३०१	न ज्ञानात्सन्ति दानानि ।	म. पु. ५६. ७३
३०२	अभीष्टिदानपुण्येन जायते भवनिर्भरः ।	ग. पु. ३२. १५५
३०३	आहारदानपुण्येन जायते भवनिर्भरः ।	प. पु. ३६. १५४

### वाहक

३०४	वाहकानां तु का कृपा ?	पा. पु. १२. १४७
३०५	महासत्त्वस्य रीत्रस्य शिखिनः किमु कुत्करम् ?	ह. पु. २४. १४६

### दूरदर्शिता

३०६	विजिगीषुत्वं क्रियते दीर्घदर्शिता ।	प. पु. १२. ६४
३०७	श्रेयाय दीर्घदर्शित्वं कल्प्यते प्राण्यचारिणाम् ।	प. पु. १६. २३३

### वंश/पुरुषार्थ/कर्म

३०८	सुखं वा यदि वा दुःखं, दत्ते कः कस्य संसृती ।	ह. पु. ६२. ५१
३०९	पापपाकेन दीर्घस्यं लीयत्यं पुण्यपाकतः ।	ह. पु. ४३. १२१



- प्राप्त वस्तु का पुनः दान महाफल दायक है ।
- प्रतिदान (प्रत्युपकार) के बिना बड़ी लज्जा उत्पन्न होती है ।
- त्याग से ही इस लोक में कीर्ति का लाभ होता है ।
- पात्रकों को योग्य और अयोग्य का विचार नहीं होता है ।
- पात्रदान से ऐश्वर्य प्राप्त होता है ।
- पात्रदान में सुख होता है ।
- पात्रदान ही बड़ा दान है ।
- पात्रदान से अन्य और कोई दान कल्याणकारी नहीं है ।
- ज्ञानदान से विशाल सुखों की उपलब्धि होती है ।
- ज्ञानदान से बढ़कर अन्य दान नहीं है ।
- अभयदान के पुण्य से यह जीव निर्भय होता है ।
- ग्राह्यदान के पुण्य से यह जीव सब प्रकार के भोगों को प्राप्त करता है ।
- जलाने वालों को दया नहीं होती ।
- वायु से प्रज्वलित भयंकर अग्नि के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।
- दीर्घदर्शी (दूरदर्शी) मनुष्य ही महत्वाकांक्षी होता है ।
- दूरदर्शिता प्राणियों के कल्याण का कारण है ।
- संसार में कोई किसी को सुख या दुःख नहीं देता ।
- पाप के उदय से दुर्गति और पुण्य के उदय से सुगति प्राप्त होती है ।

३१०	उद्येष्ठो विविधं हः ।	ह. पु. ४२.७३
३११	सर्वे जीवाः स्वकृतभोगिनः ।	ह. पु. ६५.४७
३१२	कृत्स्नं स्वकृतभुम् जगत् ।	ह. पु. ६२.५०
३१३	कर्मण्युपस्थिते कोऽत्र कर्त्ता ?	पा. पु. १२.२७५
३१४	कर्मतो बलवाज्जान्मो वर्तते भववासिनाम् ।	पा. पु. १२.२७१
३१५	कर्मणा कलिताः सन्तः सन्तः तीव्रान्ति संसृता ।	पा. पु. १२.१५५
३१६	देवे तु कुत्रिते तस्य स यत्नः किं करिष्यति ।	ह. पु. ६२.४६
३१७	दुर्बारा भवितव्यता ।	ह. पु. ६१.७७
३१८	परमो हि शुद्धविधिः ।	प. पु. १७.५४
३१९	कृत्स्नं विविधं जगत् ।	प. पु. ४५.५२
३२०	कर्म विविधत्वाभ्यामसम्पन्नं विधेर्विहितम् ।	प. पु. १२२.१६
३२१	विज्ञा हि ज्ञेयस्यैर्गुणैः प्रथमं कर्महेतुम् ।	प. पु. ६.४१६
३२२	निकाशितं कर्म नरेणैव यस्यैव भुङ्क्ते स कर्त्ता नियोज्यताम् ।	प. पु. ७२.६७
३२३	न काचिच्छूराता देवे प्राणिनां स्वकृतातिनाम् ।	प. पु. ७२.८७
३२४	लभ्यते सत्तु लब्धव्यं नातः सर्वं पलायितुम् ।	प. पु. ७२.८७
३२५	कृतानि कर्माण्यनुभानि पूर्वं संस्तप्यभुञ्जं जनयन्ति पश्चात् ।	प. पु. ८३.१३४
३२६	कर्मणामुचितं तेषां जायते प्राणिनां कलम् ।	प. पु. १३.६८
३२७	कर्मणामुचितं तेषां सर्वं कलमुपाश्नुते ।	प. पु. ३१.७६
३२८	सकरोति न सुरेन्द्रोऽपि विघातुं विविधमन्यथा ।	प. पु. ३०.२४
३२९	उपर्यधरता गान्ति जीवाः कर्मवत्सं गताः ।	प. पु. १०९.६६

- कर्म सबसे बड़ा गुरु (शिक्षक) है ।
- सब जीव अपने किए का फल भोगते हैं ।
- समस्त संसार अपने किये का फल भोगता है ।
- इस संसार में कर्मोदय से अधिक बलवान् कोई नहीं है ।
- संसारी प्राणियों के लिए कर्म से अधिक बलवान् अन्य कोई नहीं है ।
- कर्म से घिरने पर सज्जन इस संसार में दुःखी होते हैं ।
- भ्रातृ के कुटिल होने पर यत्न (उद्योग) कुछ नहीं कर सकता ।
- होनहार दुर्निवार है ।
- देव ही सबसे बड़ा गुरु है ।
- समस्त संसार कर्म के अधीन है ।
- कर्मों की विविधता के कारण मन की विविध चेष्टाएं होती हैं ।
- अपने कर्मों के कारण लोगों की चित्तवृत्ति विविध होती है ।
- जिस मनुष्य ने निःकाचित कर्म बांधा है वह उसका फल नियम से भोगता है ।
- स्वच्छ भोगी प्राणियों की देव के भागे कोई छूटता नहीं चलती ।
- मिलनेवाली वस्तु मिलती ही है उससे बचा नहीं जा सकता ।
- पूर्व में किए हुए अशुभ कर्म बाद में उग्र समाप उत्पन्न करते हैं ।
- प्राणियों को कर्म अनुसार ही फल मिलता है ।
- सबलोग कर्मों का उचित फल भोगते हैं ।
- होनहार को इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ।
- प्राणी कर्मवश ऊँची और नीची गति को प्राप्त करते रहते हैं ।

३३०	माना कर्मस्थितौ स्वस्या कोऽनुसोचति कोविदः ।	प. पु.	३१.२५७.
३३१	अवश्यं भावुकस्तीव्रो विरहः कर्मनिमित्तः ।	प. पु.	३१.३.१०
३३२	स्वकृतप्राप्तिवरयामा किं करिष्यन्ति देवताः ।	प. पु.	३१.४०
३३३	देवासुरभगुज्येष्ठः स्वकर्मवसवतिनः ।	प. पु.	३१.३.११
३३४	भेदो नियोज्य सोऽप्यं कर्मपाकमुपापतम् ।	प. पु.	३७.८१
३३५	इदं कर्मविधिप्रवाद् विधिजं परमं जगत् ।	प. पु.	४१.१०५
३३६	यद्यथा भाव्यं कः करोति तद्यम्यथा ।	प. पु.	४१.१०९
३३७	न कुरेरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुं मम्यथा ।	प. पु.	४२.७
३३८	विज्राहीनापि विष्मन्ति नराः कर्मबलेरितारः ।	प. पु.	४२.९४
३३९	कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति समक्षियाः ।	प. पु.	४६.९९
३४०	विधिना कर्मजा मतिः ।	प. पु.	१०.११५
३४१	कर्मवशाज्जन्तुः संसारे परिवर्तते ।	प. पु.	४६.२६२
३४२	गतयो भिन्नवर्णानः कर्मभेदेन देहिनाम् ।	प. पु.	७५.२४०
३४३	मर्त्यन्ते कर्मभिर्बन्धवः ।	प. पु.	११.१२३
३४४	सुभासुभविपाकानां भाविनां को निवारकः ।	प. पु.	६८.४३५
३४५	गतयः कर्मणा कस्य विधिनाः परिनिमित्ताः ?	प. पु.	१७.८५
३४६	अगत्प्राग्विहितं सर्वं प्राप्नोत्यत्र न संशयः ।	प. पु.	४६.३१
३४७	प्राप्तव्यं जायतेऽवश्यम् ।	प. पु.	७७.४८
३४८	स्वकृतसंप्राप्तिप्रवणाः सर्वदेहिनः ।	प. पु.	७७.६६

- कर्मों की स्थिति नाना प्रकार की है, बुद्धिमान् इसका शोक नहीं करते ।
- कर्माधीन तीव्र वियोग अवश्यभावी है ।
- कर्माधीन लोगों का देव भी कुछ नहीं कर सकते ।
- देवेन्द्र, अमुरेन्द्र और नरेन्द्र सब अपने अपने कर्म के अधीन होते हैं ।
- पूर्वोपाजित कर्मों का फल मीखें बन्द करके (धर्मपूर्वक) सहन करना चाहिये ।
- कर्मों की विविधता के कारण यह संसार अस्थायी विविध है ।
- होमी को कोई नहीं टास सकता ।
- देव भी कर्मों को बदल नहीं सकते ।
- कर्मबल से प्रेरित होकर मनुष्य पिता आदि को भी मार डालते हैं ।
- कर्मोदय के कारण सब एक समान क्रियाशील नहीं होते ।
- कर्मों की गति विविध होती है ।
- कर्म के बल से जीव संसार में परिवर्तन (परिणमन) करता रहता है ।
- कर्मों के भेद से जीवों की गतियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं ।
- प्राणी कर्मों के द्वारा नष्ट होते हैं ।
- शुभाशुभ कर्म के उदय को कोई रोक नहीं सकता ।
- कर्मों की विविध गति को कोई नहीं जान पाता ।
- निस्सन्देह संसार के प्राणी पूर्वभय में जो कुछ करते हैं, इस भय में उसका फल अवश्य पाते हैं ।
- जो वस्तु प्राप्त होनी है वह अवश्य ही प्राप्त होती है ।
- सभी प्राणी अपने कर्मों का फल प्राप्त करने में ही प्रवृत्त हैं ।

३४६	अन्तोनित्य कम बान्धवः सञ्चरेन्न वा ।	प. पु. ११२.६०
३५०	धियः कर्मानुभावेन ।	प. पु. १०६.१६५
३५१	माहात्म्यं कर्मणामेतदसंभाव्यमवाप्स्यते ।	प. पु. १०६.२११
३५२	प्रत्याकृत्य कृतं कर्म फलमर्पयति ध्रुवम् ।	प. पु. १०६.२१५
३५३	कर्म चेत्त्रिभ्योगेक विचित्रं यच्चराक्षरम् ।	प. पु. ११०.३६
३५४	सर्वे क्षरोरित्यः कर्मवते वृत्तिमुवाचिताः ।	प. पु. ११०.४५
३५५	कर्मवर्गस्य चित्रस्वाप्त सर्वो बोधिभाग्यजनः ।	प. पु. १०६.१२५
३५६	जलानां हि समस्तानां जलं कर्मकृतं परम् ।	प. पु. १०.२७
३५७	चित्रं विलसितं विधेः ।	म. पु. ६२.५०८
३५८	विचित्रा विधिबोधना ।	म. पु. ६२.५५६
३५९	यस्य यद्गुणः तत्किमन्यथा ।	म. पु. २.६१
३६०	विधिरेव जगद्गुणः ।	ह. पु. ५१.३८
३६१	गुणं गुण्या भवितव्यता ।	ह. पु. ६२.४४
३६२	विधिः किं न करोति हि ।	वा. पु. ७.२२१
३६३	स्वकृतविधिविधानात्कस्य किं वात्र न स्यात् ।	म. पु. ७२.२८५
३६४	अनर्थं केनचिच्चात्र प्रायेण विधिबोध्यतम् ।	म. पु. ६५.१५०
३६५	विधेर्विलसितं चित्रमगर्ह्य योगिनामपि ।	म. पु. ७१२.२६६
३६६	किं न स्यात् सम्मुखे विधी ?	म. पु. ५५.१४८
३६७	देवस्य कुटिला गतिः ।	म. पु. ७५.७५
३६८	विचित्रा विविधस्यः ।	म. पु. ४५.७६

- प्राणी का अपना कर्म ही उसका बन्धु या शत्रु है ।
- बुद्धि कर्म के अनुसार होती है ।
- कर्मों के माहात्म्य से असंभव वस्तु प्राप्त हो जाती है ।
- किया हुआ कर्म लौटकर अवश्य फल देता है ।
- कर्मों की विचित्रता के कारण यह बराबर विश्व विविध है ।
- सभी प्राणी कर्मों के बल से (अपनी अपनी) वृत्ति में लगे हुए हैं ।
- कर्मबन्ध की विचित्रता होने से सभी जानी नहीं हो जाते ।
- सब बलों में कर्मकृत बल ही सबसे अधिक शक्तवान् है ।
- कर्मों की गति बड़ी विविध है ।
- कर्मों की प्रेरणा विविध होती है ।
- जिसका जो भवितव्य होता है वह धर्मशा नहीं हो सकता ।
- विधि ही संसार का गुरु है ।
- होमहार टाला नहीं जा सकता ।
- विधाता सब कुछ कर सकता है ।
- अपने किए कर्मों के अनुसार सबको सब कुछ मिल जाता है ।
- इस संसार में विधाता की चेष्टाओं का कोई भी उत्संखन नहीं कर सकता ।
- भाग्य की विचित्रता योगियों द्वारा भी अगम्य है ।
- भाग्य की अनुकूलता से सब कुछ हो सकता है ।
- भाग्य की गति बड़ी कुटिल होती है ।
- भाग्य की लीला विचित्र होती है ।

३६६	बिना देवात्कृतः श्रियः ?	म. पु. ६८.४८४
३७०	नरकेषूपजायन्ते पापभारमुलूकताः ।	प. पु. १०५.११७
३७१	दुरन्तः कर्मणां पाको ब्रूति कटुकं कलम् ।	म. पु. १०.३०
३७२	योग्ये समुद्यमो युक्तो ।	पा. पु. १२.२१८
३७३	साहस्यमपि संप्राप्यं सत्फलं व्यवसायतः ।	म. पु. ६८.७४
३७४	भिर्येवं पौरुषाणहम् ।	पा. पु. १२.११७
३७५	अनर्थकस्य संसिद्ध्यै केवलं न पौरुषम् ।	प. पु. १२.१६६
३७६	उपायो निष्फलः कस्य न विवाहाय धीमतः ।	म. पु. ४८.६५

### धर्म/अधर्म

३७७	क्रोधलोभतुगर्वाणां त्यागो हि वृत्त उच्यते ।	पा. पु. १८.१६०
३७८	आपदाः धर्मतः पुंसां सम्पदार्थं भवेत्सद्यु ।	पा. पु. १७.१६०
३७९	प्राणीप्सितं सुसर्माणि जायन्ते धर्मतो ध्रुवम् ।	पा. पु. १७.१५७
३८०	धर्मस्यैव विजृम्भितेन भविता किं किं न बोधयते ?	पा. पु. १२.३६७
३८१	दुष्पाद् वारीयते वल्लिर्जलधिः स्थलसि ध्रुवम् ।	पा. पु. १२.१७१
३८२	धर्मो जीवदया धर्मः सत्यवाक् सयमस्थितिः ।	पा. पु. ३.२४०
३८३	धर्मातिवर्षनिष्पत्तिस्त्रिषु लोकेषु भाविता ।	ह. पु. १८.३५
३८४	धर्मो मङ्गलमुत्कृष्टम् ।	ह. पु. १८.३७
३८५	धर्म एव परं लोके शरणं शरणाधिनाम् ।	ह. पु. १८.३६



- देव के बिना लक्ष्मी प्राप्त नहीं हो सकती ।
- पाप-मार से बोझिल जीव नरकों में उत्पन्न होते हैं ।
- बुरे कर्मों का फल कड़वा होता है ।
- योग्य कार्य में उत्तम करना उचित है ।
- उत्तम से उत्तम उत्तम फल भी प्राप्त हो जाता है ।
- पौष्टिक को नष्ट करनेवाले आग्नेय को विषकार है ।
- केवल पुरुषार्थ ही कार्य सिद्धि का कारण नहीं है ।
- फलहीन प्रयत्न प्रत्येक बुद्धिमान् को दुःखी करता ही है ।
- क्रोध-लोभ और गर्व का त्याग ही धर्म कहा जाता है ।
- धर्म के कारण आपत्तियाँ भी पुरुषों को शीघ्र ही सम्पत्ति प्राप्त करा देती हैं ।
- धर्म से प्राणियों को निश्चित रूप से इष्ट सुखों की प्राप्ति होती है ।
- धर्म के प्रभाव से मनुष्य को सब कुछ मिल जाता है ।
- धर्म के प्रभाव से अग्नि जलरूप हो जाती है, समुद्र स्थल के समान हो जाता है ।
- जीवों पर दया करना, सत्य बोलना और संयम पालना धर्म है ।
- तीनों लोकों में त्रिवर्ग की प्राप्ति धर्म से ही कही गई है ।
- धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है ।
- शरणार्थी-जनों के लिए शोक में धर्म ही उत्तम शरण है ।

३८६	धर्मो जगति सर्वेभ्यः परार्थेभ्य इहोत्तमः ।	ह. पु.	१८.३८
३८७	धर्मस्यैव विवृण्वितेन भुवने मान्यो जनो जायते ।	वा. पु.	२.२४६
३८८	धर्मस्य लभते सौख्यम् ।	म. पु.	१८.१८८
३८९	पापकूपे निमग्नेभ्यो धर्मो हस्तावलम्बनम् ।	ह. पु.	२१.२४५
३९०	लोकधर्मप्रियो जनः ।	म. पु.	१५.७२
३९१	धर्मः कल्पद्रुमस्त्रिस्तारस्य धर्मो निधानकम् ।	क. म.	११.१९०
३९२	अहिंसाव्रितेभ्योऽप्यपरो धर्मो न तत्पतः ।	म. म.	१८.४
३९३	कार्यो धर्मो दयान्वयः ।	म. म.	१९.१९१
३९४	धर्मो धूर्तं सुभोः परेऽप्यर्तो दुःसप्तारणम् ।	म. पु.	१३.३९०
३९५	सारस्त्रिभुवने धर्मः सर्वेन्द्रिय सुखप्रदः ।	म. पु.	१४.१५५
३९६	नैव किञ्चिदसाध्यत्वं धर्मस्य प्रतिपद्यते ।	म. पु.	१४.१२५
३९७	धर्माद्व्ययश्च लोकेऽस्मिन् सुहृद्भास्ति नरीरिणाम् ।	म. पु.	४.३९
३९८	दुर्लभो धर्मो जिनेन्द्रजघनोद्गतः ।	म. पु.	४९.१०६
३९९	प्राणिनां रक्षणाय धर्मः ।	म. पु.	१२.१३२
४००	धर्मेन रहितैर्लभ्यं नहि किञ्चित्सुखावहम् ।	म. पु.	९१.४८
४०१	धर्मः प्राणिभ्यो स्मृता ।	म. पु.	२६.६४
४०२	सहगामि सुधर्माश्च पाथेयं परब्रह्मणि ।	म. म.	१८.७
४०३	धर्मास्तर्वाचसंसिद्धिः ।	म. म.	५.६२
४०४	धर्माविष्टार्थसंप्राप्तिः ।	म. म.	५.१४३
४०५	लोचं कार्यं न नीरक्तम् ।	म. म.	६.९

- इस संसार में धर्म सब पदार्थों में उत्तम है ।
- धर्म के माहात्म्य से ही प्राणी जगत् में मान्य होता है ।
- धर्म से सुख मिलता है ।
- पापरूपी कुएं में डूबे हुए मनुष्यों के लिए धर्म हाथ का सहारा है ।
- योगों को लौकिकधर्म प्रिय होता है ।
- धर्म ही कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और सब रत्नों की खान है ।
- महिलादि व्रतों से बढ़कर वस्तुतः धर्म कोई धर्म नहीं है ।
- वयामय धर्म ही सेव्य है ।
- धर्म पुण्योत्पत्ति का मूल है और अधर्म दुःख का कारण है ।
- धर्म ही समस्त इन्द्रियों को सुख देनेवाला तीनों लोकों में सारभूत तत्त्व है ।
- धर्म के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है ।
- धर्म से बढ़कर देहधारियों का लोक में कोई दूसरा मित्र नहीं है ।
- अहंत् के मुक्तारविन्द से प्रकट धर्म दुर्लभ है ।
- प्राणियों की रक्षा करना धर्म है ।
- धर्मरहित प्राणी किसी सुखदायी वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाते ।
- जीव-दया धर्म है ।
- सुधर्म के प्रतिरिक्त परब्रह्म में साथ जानेवाला धर्म कोई पायेम नहीं है ।
- धर्म से सब अर्थों की सिद्धि होती है ।
- धर्म से इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है ।
- जल से शुद्धि शीघ्रधर्म नहीं है ।

४०६	धर्मसमो बन्धुर्नान्यो लोकत्रये क्वचित् ।	व. अ. ६. १५४
४०७	धर्मद्विजे न स्युः सुखाद्यभीष्टसंपदः ।	व. अ. ७. ५७
४०८	धर्मोऽधर्महरः ।	व. अ. ७. १२५
४०९	धर्मात्मास्त्वपरो जगत्सुखिवक्तुः ।	व. अ. ७. १२५
४१०	धर्मः कल्पतरु स्नेहान् ।	म. पु. २. ३४
४११	क्षिप्ता धर्माश्च सम्पदः ।	म. पु. ५. १८
४१२	धर्मकालं हि धर्मं ।	म. पु. १६. २७३
४१३	धर्मो बन्धुरश्च मित्रञ्च धर्मोऽयं नृहरिर्मात् ।	म. पु. १०. १०९
४१४	धर्मविष्टाभंसम्पत्तिः ।	म. पु. ५. १५
४१५	धर्मो हि धर्मस्य परम् ।	व. पु. ६. २०
४१६	धर्म एको महाबन्धुः सारः सर्वजरीरिणाम् ।	व. पु. ७८. २४
४१७	महिषादिगुणाद्यस्य किमु धर्मस्य दुष्करम् ?	व. पु. ८०. १३८
४१८	किमु धर्मस्य दुष्करम् ।	व. पु. ८१. १८
४१९	धर्मो नाम वरो बन्धुः ।	व. पु. ८५. २१
४२०	वयामूलस्तु यो धर्मो महाकल्याणकारणम् ।	व. पु. ८५. २३
४२१	धर्मो रक्षति मर्माणि ।	व. पु. ७४. ५६
४२२	धर्मो जयति दुर्जयम् ।	व. पु. ७४. ५६
४२३	सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एकः सुखाग्रहः ।	व. पु. ३६. ३७
४२४	धर्मध्वंसे सता ध्वंसः ।	म. पु. ७६. ४१८
४२५	कस्य न धर्मः प्रीतये भवेत् ?	म. पु. ७५. ६८८
४२६	धर्म एव परं मित्रम् ।	म. पु. ५६. २७०

- तीन लोक में कहीं भी धर्म के समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है ।
- धर्म के बिना पञ्चादि अभीष्ट सम्पदाएं प्राप्त नहीं होतीं ।
- धर्म अधर्म का हर्ता है ।
- धर्म के अतिरिक्त संसार में अन्य कोई कल्याणकारी नहीं है ।
- धर्म स्थिर रहनेवाला कल्पवृक्ष है ।
- धर्म के बिना सम्पदा नहीं होती ।
- सुख धर्म का ही फल है ।
- धर्म ही जीवों का बन्धु है, मित्र है और गुरु है ।
- धर्म से अभीष्ट सम्पत्ति मिलती है ।
- धर्म ही परम शरण है ।
- धर्म ही एक सार है, वैश्वारिबों का वही महाबन्धु है ।
- अहिंसादि गुणों से युक्त धर्म के लिए कोई बात कठिन नहीं है ।
- धर्म के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।
- धर्म ही परम बन्धु है ।
- व्यामूलक धर्म ही कल्याणकारी है ।
- धर्म मर्मस्थानों की रक्षा करता है ।
- धर्म से दुर्जय शत्रु भी जीता जाता है ।
- संसार में सभी सुख-दुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुख का आधार है ।
- धर्म के नष्ट होने पर सज्जनों का नाश हो जाता है ।
- धर्म सबको प्रिय होता है ।
- धर्म ही परम मित्र है ।

४२३	धर्मो हि हिमन्निह निषिद्धममेतं लिख्य ।	म. पु. ७१.४६२
४२८	धर्मो ह्यापत्प्रतिक्रिया ।	म. पु. ४२.११५
४२९	धर्मो हि निषिरलायः ।	म. पु. २.३४
४३०	धर्मो हि मूलं सर्वासां धनद्विसुखसंपदाम् ।	म. पु. २.३३
४३१	धर्मः कामदुषा येनः ।	म. पु. २.३४
४३२	धर्मरिक्तात्मानमनिर्महान् ।	म. पु. २.३४
४३३	धर्मस्थो हि जनोऽन्यस्य दण्डप्रस्थापने प्रभुः ।	म. पु. ४०.११९
४३४	धर्म्या न सहन्ते स्थितिक्षतिम् ।	म. पु. १२.१४७
४३५	धर्मात्मना चेष्टा प्रायः धर्मोऽनुबन्धनी ।	म. पु. २४.६
४३६	नामर्मात्मसुखसम्प्राप्तिः ।	म. पु. ५.१६
४३७	जीर्णवृत्तिरधर्मेण ।	म. पु. १०.१३६
ध्यान		
४३८	मात्मध्यानतत्परं ध्यानं ।	म. पु. १५.८
४३९	रीडातप्रथमा जीवा धाम्नि नरकावनिम् ।	म. पु. १०५.११६
४४०	योगः समाधिः ।	म. पु. १८.१५६
४४१	योगो ध्यानं ।	म. पु. १८.१७६
धैर्यं		
४४२	जीवन् पश्यति भद्राणि धीरन्धरतरावपि ।	म. पु. ४५.८४
४४३	इत्याख्यं धैर्यं हि मानिभाम् ।	म. पु. १८.१३६
निन्दा प्रशंसा		
४४४	मुच्यन्ते देहिनः पापैरात्मनिन्दा विगर्हणैः ।	म. पु. २६.६४

- इस संसार में कर्म के सिवन्द कर्म कोई कल्याणकारी नहीं है ।
- धर्म से ही आपत्तियों का प्रतिकार होता है ।
- धर्म ही अविनाशी निधि है ।
- धन, श्रद्धा, सुख और सम्पत्ति इन सबका मूल कारण धर्म ही है ।
- धर्म कामधेनु है ।
- धर्म महान् चिन्तामणि है ।
- धर्मात्मा पुरुष ही दूसरों को दण्डित करने में समर्थ है ।
- धर्मात्मा मर्यादा की हानि सहन नहीं करते ।
- धर्मात्माओं की चेष्टाएं प्रायः कल्याण के लिए ही होती हैं ।
- अधर्म से सुख नहीं मिलता ।
- अधर्म से नीच गति मिलती है ।
- आत्मध्यान स बढ़कर कोई दूसरा ध्यान नहीं है ।
- रीढ़ तथा आर्तध्यान से जीव नरक में जाते हैं ।
- योग ही समाधि है ।
- योग ही ध्यान है ।
- शीर मनुष्य जीवित रहे तो बहुत समय बाद भी कल्याण को पा लेता है ।
- भानियों का वीर्य प्रशंसनीय है ।
- अपत्ती निन्दा, गर्हा करने से लोग पापों से मुक्त हो जाते हैं ।

४४५ निवेदयन् गुणांस्तावत्सोकैः सं याति साधवम् । प. पु. ४४.६६

४४६ आत्मस्तवोऽन्यनिन्दा न मरणात् विशिष्यते । म. पु. ७५.५६६

४४७ न कश्चित्स्वयमात्मानं संसृज्जानोति गौरवम् । प. पु. ७३.७४

### निमित्त

४४८ नक्षत्रेण तुल्ये किं वा परसोरुचिता गतिः । प. पु. ६०.६८

४४९ निमित्तमात्रताम्येषामसुखस्य सुखस्य वा । प. पु. ८.२४८

४५० समर्थे कारणे नूनं सतां सीमं व्यवहितम् । प. पु. २५.१२४

४५१ कारणानुगुणं कार्यम् । म. पु. ५४.१६०

४५२ हेतुसमं फलम् । प. पु. ७.२०२

४५३ कालमवधानं किं न जायते कुर्वन् । ख. ख. ४.५३

### निर्भीकता

४५४ आयुर्धेः किमभीतानाम् ? प. पु. १०५.१८३

### निवृत्ति

४५५ बाधाभिन्नवृत्तिरस्यापि संसारोत्सारकारणम् । प. पु. ४६.५७

४५६ निवृत्तिरेकापि ददाति परमं फलम् । प. पु. ४६.५६

### निश्चय

४५७ निश्चयात् किं न लभ्यते ? प. पु. ७.३१५

### नोति

४५८ कालप्राप्तं नयं सन्तो मुञ्चन्ताना वान्ति सुखताम् । प. पु. ६.२५

४५९ कार्यसिद्धिरिहोभोष्टा सर्वथा नयशासिभिः । प. पु. ५३.८५



- लोक में अपने गुणों का बखान करनेवाला मनुष्य भी लघुता को प्राप्त होता है ।
- अपनी प्रशंसा तथा दूसरे की निन्दा करना मरण के समान है ।
- कोई भी पुरुष अपनी प्रशंसा करता हुआ गौरव को प्राप्त नहीं होता ।
- नख से छेद सृण के लिए परशु का प्रयोग उचित नहीं है ।
- दूसरे लोग सुख भयवा दुःख के निमित्त भाते हैं ।
- समर्थ कारण मिलने पर ही सज्जनों का स्वभाव व्यवस्थित होता है ।
- कारण के अनुसार ही कार्य होता है ।
- कारण के समान ही उसका परिणाम होता है ।
- काल-लब्धि से यहाँ कोई भी कुर्वट घटना घटित हो सकती है ।
- निर्भीक लोगों को प्रायुषों से कोई प्रयोजन नहीं है ।
- पाप से बोड़ी सी निवृत्ति भी संसार से पार होने का कारण है ।
- निवृत्ति एकैली भी महाफलदायी होती है ।
- निश्चय से सब कुछ मिलता है ।
- समयानुकूल नीति का प्रयोग करनेवाले उन्नति को प्राप्त होते हैं ।
- संसार में नीतिज्ञ पुरुष सभी प्रकार से कार्यसिद्धि चाहते हैं ।

- ४६० न्यायानुवर्तिना युक्तं न हि स्नेहानुवर्तनम् । म. पु. ६७.१००.
- ४६१ अन्यायो हि परामृतिर्न तस्यायो महीयसः । म. पु. ४४.२५२.
- ४६२ न्यायो वयार्धवृत्तित्वम् अन्यायः प्राक्स्मारकम् । म. पु. ३६.१४१.

पराक्रम

- ४६३ न कदाचिद्विवाहोऽस्ति विक्रान्तस्य कुप्यस्य च । प. पु. ३०.७१.
- ४६४ भीर्यमलतलायानां शूराणां न हि वर्धते । प. पु. ८.२३६.
- ४६५ नरेश्वरा क्रान्तलोभोऽपि न भीतिभावा प्रहरन्ति जातु । प. पु. ६६.६०.
- ४६६ न विवाहोऽस्ति शूराणामापत्सु महतीष्वपि । प. पु. ४६.४०.
- ४६७ रणे वृद्धं न भीयते । प. पु. १०३.२२.
- ४६८ कृत्ये कुण्डेऽपि साध्याद्या न त्यजन्ति सपुत्रकम् । म. पु. ५६.१५६.
- ४६९ भीराणां तानुभंगेन कृतत्वं न घनादिना । प. पु. ८.२४२.
- ४७० वरं प्राणपरित्यागो न तु प्रतिगरामतिः । प. पु. १२.१७७.
- ४७१ भीरभोग्या वसुधरा । प. पु. १०१.१३.
- ४७२ किं भीर्येण न रक्षन्ते प्राचिनो येन भीयताः ? प. पु. ६७.१७.

- ४७३ प्रस्थितः पौरुषं विभ्रतकथं भूयो निवर्तते ? प. पु. ७.५०.

परिग्रह/भोग

- ४७४ कथं चेतोविशुद्धिः स्यात् परिग्रहवतां सताम् ? प. पु. २.१८०.

- न्याय के अनुसार चलनेवाले पुरुषों को स्नेह का अनुवर्तन करना उचित नहीं है ।
- अन्याय करना ही महापुरुषों का पराभव है, अन्याय का त्याग नहीं ।
- वया से कोमल परिणाम होना न्याय है और प्राणियों का भारना अन्याय है ।
- शूरवीर और बुद्धिमान् को विवाद कभी नहीं होता ।
- जिनके शरीर में धाव नहीं सकते ऐसे शूरवीरों का पराक्रम बढ़ता नहीं ।
- बलिष्ठ और शूरवीर शासक कभी भी भयभीत पर प्रहार नहीं करते ।
- शूरवीर बड़ी-बड़ी विपत्तियों में भी विवाद नहीं करते ।
- युद्ध में पीठ नहीं दिखाई जाती ।
- बलशाली कठिन कार्य में भी उत्थम नहीं छोड़ते ।
- वीर मनुष्यों का कृतकृत्यपना शत्रुओं के पराजय से ही होता है, वधाधि की प्राप्ति से नहीं ।
- प्राणों का परित्याग अच्छा किन्तु शत्रु के प्राये झुकना अच्छा नहीं ।
- पृथ्वी वीर भोग्या है ।
- उस पराक्रम से कोई लाभ नहीं जिससे कि भयभीत प्राणियों की रक्षा नहीं होती ।
- पराक्रमधारी पुरुष प्रस्थान करने के पश्चात् फिर वापस नहीं लौटते ।
- परिग्रही मनुष्यों के चित्त की बुद्धि नहीं हो सकती ।

४७५	भोगसंवर्तनं येन कर्मणा नावमुच्यते ।	प. पु. १०६.१९३
४७६	भोगाः अजविनस्वराः ।	प. पु. १.७६
४७७	नामभोगोपमा भोगा भीमा नरकपातिनः ।	प. पु. ५.२२४
४७८	कर्मणा भोगेभ्यः स्वर्गलोका विहाय स्वर्गकारिणः ।	प. पु. ११.८०
४७९	स्वप्नभोगोपमा भोगाः ।	प. पु. २१.११५
४८०	भोगेष्वात्युत्सुकः प्रायो न च वेद हिताहितम् ।	म. पु. ३६.८५
४८१	भोगिवरुच्यङ्गला भोगाः ।	पा. पु. २५.२५
४८२	क्रियाकफलवद् भोगा विपाकविरसा भूतम् ।	प. पु. ७५.११
४८३	त्यागो भोगाद्य भर्मस्य काचायेव महात्मनोः ।	म. पु. ५६.२६६
४८४	भोगिनो भोगवद् भोगाः ।	म. पु. ४५.१६८
४८५	आपातमात्ररम्याश्च भोगा पर्यस्ततापिनः ।	म. पु. ८.५४
४८६	राज्यं रजोनिभं प्राक्तनं ।	पा. पु. १०.७
४८७	विषयेभ्युत्थयमानेहि न तृप्तिं याति रेहिनः ।	पा. पु. ६.४७
४८८	भुज्यमानाः सुखायस्ते विषया दुःखदायिनः ।	म. पु. ६.४८
४८९	सुखस्यानादि निर्वाणः ।	म. प. ५.१४३
४९०	सुखं श्रवयिष्यं कठु ।	म. प. ५.१०१
४९१	विद्युत्लोसा विधूतयः ।	म. पु. ४७.२३६
४९२	भोगिभोगसमा भोगास्तापोपचयकारिणः ।	प. पु. २६.७५
४९३	दुःखमेतद्भि सुदानां सुखस्येनावभासते ।	प. पु. २६.७६
४९४	आपातरमणीयानि सुखानि विषयावयः ।	प. पु. २६.७७

- भोगों में आसक्ति के कारण मनुष्य कर्म में नहीं छूटता ।
- भोग क्षणभंगुर हैं ।
- भोग नाग के फण के समान भयंकर एवं नरक में गिरानेवाले हैं ।
- घोखा देनेवाले भोगों से किसी लाभ की आशा नहीं ।
- भोग स्वप्नभोग के समान हैं ।
- भोगों के प्रति उत्सुक मनुष्य प्रायः हिताहित नहीं जानते ।
- भोग सर्प के शरीर के समान चञ्चल हैं ।
- भोग क्षिपाकफल के समान परिपाककाल में अत्यन्त विरस होते हैं ।
- भोग के लिए धर्म का त्याग काच के लिए महामणि के त्याग के समान है ।
- भोग सर्पफण के समान हैं ।
- भोग भोगकाल में सुखकर प्रतीत होते हैं परन्तु धन में सन्तापकारी हैं ।
- समृद्ध राज्य भी धूल के समान है ।
- भोगे जाने पर भी विषयों से प्राणियों की तृप्ति नहीं होती ।
- दुःखदायी विषय भोगकाल में मनुष्यों को सुखदायी लगते हैं ।
- सांसारिक सुखों के त्याग से ही निर्वाण की प्राप्ति होती है ।
- विषय सुख कड़वे होते हैं ।
- विभूतियाँ विजली के समान चञ्चल होती हैं ।
- भोग सर्प के फण के समान ताप को ही बढ़ानेवाले होते हैं ।
- मूर्ख प्राणियों को दुःख भी सुखरूप जान पड़ता है ।
- विषयादि सुख भोगकाल में ही रमणीय होते हैं ।

४६५	विषया विषयारूपाः ।	म. पु. ११.१७४
४६६	नीयन्ते विषयैः प्रायः सत्त्ववन्तोऽपि वश्यताम् ।	प. पु. ८.७३
४६७	रिपय उन्नतरा विषयाः ।	प. पु. ८.५३१
४६८	विषया विधत्तपृक्ताः ।	म. पु. ४.१४६
४६९	दुष्करो विषयस्त्वायः कौमारे बहुतामपि ।	म. पु. ६६.४४
५००	विषयाविषयतत्त्वस्य मत्स्थो ब्रह्म सत्यमुते ।	प. पु. १०५.२५७
५०१	असिधारामधुस्तादसमं विषयार्थं सुखम् ।	प. पु. १०५.१८०
५०२	सर्कराप्यलमास्वाद्यान्नावदातिर साभरम् ।	ह. पु. २२.१६
५०३	ग्रहा इव गृहाः पुंसां विकाराकरकारिणः ।	पा. पु. २४.११
५०४	विधिमौ नृपतेर्महर्षी कुलदासमधेष्ठिताम् ।	प. पु. ७६.१२
५०५	विषयस्त्विति दृष्टा पूर्वोर्ध्वं पद्यतिः ।	प. पु. ६.२००
५०६	राज्यं राजोभिर्भूतं नूनं सर्वपापनिवन्धनम् ।	म. म. ५१००
५०७	हिरण्यवानतः कोऽयं न मुच्यति महीतले ?	पा. पु. १४.१५८
५०८	स्वप्नप्रतिभर्मस्वप्नम् ।	प. पु. १६.११४
५०९	इन्दिरा मुन्धरी नैव मन्दिरं कुष्ठकर्मणः ।	पा. पु. १२.१४०
५१०	रमार्थं मारुतं पुंसां सा रमा विरसा मता ।	पा. पु. १२.१२२
५११	विद्यो माया ।	म. पु. ५८.६
५१२	स्वयं गृहागतां लक्ष्मीं हन्यात्पावेन को विधीः ?	म. पु. ६८.२३५
५१३	लक्ष्मीस्तद्विद्विषोसा ।	म. पु. ८.५३
५१४	लक्ष्मीरतिचला ।	म. पु. ४.१५०

- विषय विष के समान दुःखदायी होते हैं ।
- विषय सात्त्विक लोगों को भी प्रायः अपने वज्र में कर लेते हैं ।
- विषय प्रबलतम शत्रु होते हैं ।
- विषय विषपूर्ण होते हैं ।
- कुमारावस्था में विषयों का त्याग करना महापुरुषों के लिए भी कठिन है ।
- विषयरूपी मांस में घासकल मत्स्य (मछली) बंध को प्राप्त होता है (विषयासक्त जीव बंध को प्राप्त होता है ।)
- विषयजन्य सुख लङ्घधारा पर लगे हुए मधु के स्वाद ■ समान है ।
- शक्कर अधिक शान पर भी दूसरा स्वाद नहीं देती ।
- घर (जनि प्रादि) ग्रहों के समान बिकार उत्पन्न करनेवाले ■ ।
- कुलटा के समान चेष्टाकारिणी इस राजलक्ष्मी को धिक्कार है ।
- पूर्व पुरुषों ने राजलक्ष्मी को विषवेष्ट के समान बेला है ।
- राज्य निश्चय से भूलि के समान है और समस्त पापों का कारण है ।
- सोने का दान पाकर सब सन्तुष्ट होते हैं ।
- ऐश्वर्य स्वप्न के समान होता है ।
- लक्ष्मी सुन्दर नहीं है, वह तो दुष्टकर्मों का घर है ।
- जिस लक्ष्मी के लिए मनुष्यों की हत्या की जाती है वह स्थायी नहीं है ।
- लक्ष्मी मायारूप है ।
- स्वयं घर आयी लक्ष्मी को कोई भी बुद्धिमान् पैर से नहीं ठुकराता ।
- लक्ष्मी बिजली के समान चञ्चल है ।
- लक्ष्मी अत्यन्त चञ्चल है ।

५१५	न हि मृतीनामेकस्मिन् सर्वदा रतिः ।	प. पु. ६.४८६
५१६	कथिभ्रूभंगुरा लक्ष्मीः ।	प. पु. ३२.६२
५१७	नीतिविष्णुमयोर्लक्ष्मीः ।	म. पु. ६२.४४
५१८	धर्मं बुःस्वानुबन्धनम् ।	म. पु. ४.१४६
५१९	अर्थेन विप्रहोतस्य न मित्रं न सहोदरः ।	प. पु. १५.१६२
५२०	सदा सनिधनं धनम् ।	म. पु. ८.७७
५२१	न परमार्थार्थिनः पार्थ संशयसंशितं महत् ।	म. पु. ६७.२१८
५२२	स्थापतेयमपि स्थापसद्वृत्तं तारर्थाजितम् ।	पा. पु. १२.१२१
५२३	धनं किं न करोति वै ?	पा. पु. ४.२०२
५२४	अर्थात् समीहितं सुखम् ।	अ. अ. ५.१४३
५२५	देशयेव जीर्णं लैनिम्ना ।	अ. अ. ५.१०१
५२६	संभोजः संविभाजनं फलमर्थार्जने द्वयम् ।	म. पु. १७.१८
५२७	एवमादिदेशीनां चित्तशयो चतुर्थयः ।	म. पु. ८.६८
५२८	विषयताञ्च सम्यहः ।	म. पु. ८.७७
५२९	संपदो विषयोऽङ्गिनाम् ।	म. पु. ६१.२२८
५३०	सम्यहो जलकस्तोसचिलोलाः सर्वमङ्गवम् ।	म. पु. ४.१५०
	परित्याग/भाव	
१३५	कुर्व्वाष्टिकामनाम्यरत्नं वरम् ।	प. पु. १०६.१५१
५३२	सुलेख्यानी प्रायेण हि मुखाः प्रियाः ।	म. पु. ७४.२८६
५३३	कित्रा हि परिणामवत्ताद् गतिः ।	ह. पु. १८.१२४



- सम्पदाओं की सदा एक ही व्यक्ति में रति नहीं रहती ।
- लक्ष्मी जलर की गौड़ के समान चञ्चल है ।
- लक्ष्मी नीति और पराक्रम से उपलब्ध होती है ।
- धन दुःख को बढ़ानेवाला है ।
- धनहीन मनुष्य का न कोई मित्र होता है और न कोई भाई ।
- धन सदा ही विनाशशील है ।
- धनाभिलाषी दूसरों को ठगने से उत्पन्न महान् पाप की परवाह नहीं करते ।
- धन भी स्वप्न के समान सारहीन है ।
- धन सब कुछ कर सकता है ।
- धर्म से मनोवाञ्छित सुख मिलता है ।
- लक्ष्मी वैश्या के समान प्राणियों द्वारा निन्द्य है ।
- स्वयं उपयोग करना और दूसरों को दान देना अर्घार्जन के ये दो ही मुख्य फल हैं ।
- धन-वाञ्छादि विभूतियों स्वप्न में प्राप्त विभूतियों के समान नाशवान् हैं ।
- सम्पत्तियों का परिणाम विपत्ति होता है ।
- सम्पदाएं प्राणियों के लिए विपत्तिरूप हैं ।
- सम्पदाएं जल की लहरों के समान क्षणभंगुर और अस्थिर हैं ।
- दुर्भाग्यना रक्षने से मर जाना अच्छा है ।
- शुभलेश्याधारियों को प्रायः गुण ही प्रिय होते हैं ।
- परिणामों (मावों) के अनुसार चित्र-विचित्र गतियां होती हैं ।

- ५३४ मोक्षसाधनतः सारं मानुष्यं बुलं न भवति । ह. पु. १८.६४
- ५३५ भवावर्ते जन्तुः किं किं न जायते ? म. पु. ४६.३०
- ५३६ मानुष्यकर्मिणं कृच्छ्रात् प्राप्यते प्राणधारिणा । व. पु. ८५.१०६
- ५३७ तन्ममं बुद्धेन मानुष्यम् । व. पु. ८६.४७
- ५३८ भवानो किल सर्वेषां बुलं नो मानुषो भवः । व. पु. ११०.४६

### पुद्गल

- ५३९ विविधा पुद्गलस्त्वितिः । म. पु. ३३.६२

### पुण्य/पाप

- ५४० प्रायः प्राक्कृतपुण्येन तन्निमित्तस्मिन् देवताः । म. पु. ७५.२०६
- ५४१ शक्तो देवतानां न निःसारः पुण्यवप्यने । म. पु. ७०.४२६
- ५४२ इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागितिः । व. पु. १९.७६
- ५४३ पुण्यसंपूर्णदेहानां सौभाग्यं केन कथ्यते ? व. पु. ११.३७१
- ५४४ पुण्यानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं प्रजायते । व. पु. ९०.६०
- ५४५ पुण्यवर्ता प्रायः प्रयोगाच्छान्तता भवेत् । वा. पु. १५.१०४
- ५४६ सर्वत्र विजयः पुण्यवर्ता । म. पु. ७५.१५४
- ५४७ न विभाम्पुण्यः पुण्याद् अस्ति कश्चन पुण्यलः । म. पु. १५.२२१
- ५४८ सति पुण्ये न कः सत्ता ? म. पु. ७१.२१
- ५४९ सिद्धिः पुण्येविना कुतः ? म. पु. ७.३२२
- ५५० पुण्ये प्रसेधुषि नृणां किमिवास्थनकृष्यम् ? म. पु. २८.२१३

- मोक्ष का साधन होने से मनुष्य पर्याय ही सार है और वह अत्यन्त दुर्लभ है ।
- संसार चक्र में जीव सब कुछ बनता है ।
- प्राणी बड़ी कठिनाई से मनुष्य-भव पाता है ।
- मनुष्य पर्याय कठिनता से प्राप्त होती है ।
- सभी भवों में मनुष्य-भव दुर्लभ है ।
- दुर्गम का स्वभाव विचित्र होता है ।
- पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से देवता भी समीप आ जाते हैं ।
- देवों की शक्तियाँ भी पुण्यात्माओं के सामने निःसार हो जाती हैं ।
- पुण्यात्मा जीवों को इष्ट वस्तु मुहूर्तमात्र में प्राप्त हो जाती हैं ।
- पुण्यात्मा जीवों के सौभाग्य के विषय में कोई नहीं कह सकता ।
- पुण्यात्मा जीवों के किसी कार्य में अन्तर नहीं पड़ता ।
- पुण्यवानों के संयोग से प्रायः शान्ति मिलती है ।
- पुण्यात्माओं की सर्वत्र विजय होती है ।
- पुण्य के बिना किसी भी बड़े अभ्युदय की प्राप्ति नहीं होती ।
- पुण्य के रहते सब मित्र हो जाते हैं ।
- पुण्य के बिना सिद्धि संभव नहीं ।
- पुण्य के प्रसाद से मनुष्यों को सब कुछ प्राप्त हो सकता है ।

५५१	पुण्ये बलीयसि किमस्ति धर्मपञ्चमम् ।	म. पु. २८.२१६
५५२	पुण्यात् परं न तस्य साधनमिष्टसिद्ध्यै ।	म. पु. २८.२१५
५५३	वरिष्ठसि जने धनदायि पुण्यम् ।	म. पु. २८.२१८
५५४	पुण्यं सुसाधिनि जने सुसदायि रत्नं ।	म. पु. २८.२१८
५५५	पुण्यात्पञ्चविंशत्ये तच्छ्रद्धया क्वावतिष्ठताम् ?	म. पु. ६४
५५६	पुण्यात्तीर्थकारिणं ।	म. पु. ३०.१२६
५५७	पुण्यात् सुखं न सुखमस्ति विनेह पुण्यात् ।	म. पु. १६.२७१
५५८	अथः पुण्यादृते कुतः ?	म. पु. ३१.१५५
५५९	पुण्यैः किं तु न लभ्यते ?	म. पु. ६.१६५
५६०	पुण्यं कारणां प्राहुः जनाः स्वर्गापन्नयोः ।	म. पु. ६.२१
५६१	पुण्यैः किम्पु कुरातदम् ?	म. पु. ६.१८७
५६२	किं न स्मात् सुकृतोदयात् ?	म. पु. ५६.६७
५६३	पुण्यं पुण्यानुबन्धि यत् ।	म. पु. ५५.६६
५६४	देवाः तस्य सहामर्त्यं गच्छन्ति पुण्यवतां नृणाम् ।	म. पु. ७४.४७८
५६५	प्राक्कृतपुण्यानां स्वयं सन्ति महर्षयः ।	म. पु. ७०.१०४
५६६	न साधयन्ति केऽभीष्टं पुंसां शुभविपाकतः ?	म. पु. ४३.२१६
५६७	तर्जत्र पूर्वपुण्यानां विजयो नैव कुलीनः ।	म. पु. ७२.१७५
५६८	सम्पत्सम्पन्नपुण्यानाम् अनुबन्धाति सम्पदम् ।	म. पु. ४५.१३७
५६९	भुविषाः सधनाः पुण्यात् पुण्यास्त्वर्गश्च लभ्यते ।	म. पु. ७५.१५७
५७०	पुण्यानि फलन्ति विपुलं फलम् ।	म. पु. ७५.६३
५७१	पुण्यास्त्वर्गं सुखं परम् ।	म. पु. ७४.३६३

- पुण्य के बलवान् होने पर जन्म में कुछ भी श्रेय नहीं होता ।
- इष्टसिद्धि के लिए पुण्य से बढ़कर और कोई अन्य साधन नहीं है ।
- पुण्य ही धार्मिक मनुष्यों को धन देनेवाला है ।
- मुक्तार्थियों के लिए पुण्य सुखदायी रत्न है ।
- पुण्यरूपी क्षत्र का समाप्त होने पर उसकी छाया भी नहीं रह सकती ।
- पुण्य से ही तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है ।
- कुछ पुण्य से ही प्राप्त होता है, बिना पुण्य के कुछ नहीं मिलता ।
- पुण्य के बिना अब नहीं होती ।
- पुण्य से सब कुछ प्राप्त होता है ।
- बुद्धिमानों ने पुण्य को स्वर्ग और मोक्ष का कारण कहा है ।
- पुण्य से कुछ भी दुर्लभ नहीं है ।
- पुण्योदय से सब कुछ हो सकता है ।
- पुण्य कही है जो पुण्य का रक्षक करे ।
- देवता भी पुण्यात्माओं की ही सहायता करते हैं ।
- पूर्व में पुण्य करनेवालों को बड़ी-बड़ी श्रद्धियाँ स्वयं मिल जाती हैं ।
- पुण्योदय से पुरुषों के सब कार्य सिद्ध होते हैं ।
- पूर्वोपाजित पुण्य से सर्वत्र विजय पाना कठिन नहीं है ।
- पुण्यशाली पुरुषों की सम्पत्ति सम्पत्ति को बढ़ाती है ।
- पुण्य से निर्धन बनी हो जाते हैं, पुण्य से स्वर्ग भी प्राप्त हो जाता है ।
- पुण्य से विपुल फलों की प्राप्ति होती है ।
- पुण्य से स्वर्ग में परमसुख की प्राप्ति होती है ।

५७२	आवन्ते पुण्ययुक्तानां प्राणिनामिष्टसंगमाः ।	प. पु.	३६.८१
५७३	प्राप्नुवन्ति परं दुःखं सुकृतान्ते सुरा अपि ।	प. पु.	१७.८३
५७४	अन्तोः स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपधावते ।	प. पु.	५६.२६
५७५	पुण्योदयात्पुंसां दुर्लभं किं न जायते ?	न. च.	३६५
५७६	पुण्योदयेन जायन्ते पुण्यभावां सुखाकराः ।	ख. ख.	१७.४१
५७७	सुकृतस्य कलेन अस्तुरक्षः पश्यामोति ।	प. पु.	१२३.१७६
५७८	एको विजयते सत्त्वं पुण्येन वरिपातितः ।	प. पु.	७४.५८
५७९	क्षीणे स्वात्मोपपुण्येषु याति शक्तोऽपि विष्णुतिम् ।	प. पु.	७२.८६
५८०	सुकृतास्तत्किरेकैव श्लाघ्या मुक्तिसुखावहा ।	प. पु.	८५.११२
५८१	पुण्येन स्वेन रक्ष्यते ।	प. पु.	६६.८७
५८२	पुण्योपाजितसत्कर्मप्रभावात् परमोदयम् ।	प. पु.	१२.२४
५८३	पुण्येन लभ्यते सौख्यमपुयेन च दुःखिता ।	प. पु.	३१.७६
५८४	सुकृतं विनयः क्षुत्तं च शीलं सकयं वाचयमनस्तरं शान्तश्च ।	प. पु.	१२३.१७७
५८५	पुण्यात्सर्वं सुखाय वै ।	पा. पु.	१६.२४२
५८६	पुण्यानामेव सामर्थ्यमप्यपरिरक्ष्यते ।	ह. पु.	४६.२२३
५८७	पुण्यस्य किमु दुष्करम् ।	ह. पु.	४६.१६
५८८	पुण्यतः किं दुरापं स्यात् ?	पा. पु.	८.१२०
५८९	तत्किं न लभते पुण्यात् यस्लोके हि दुरासदम् ?	पा. पु.	८.१८४
५९०	पुण्याद्विद्यया याति दुःखं अने ।	पा. पु.	१०.२८

- पुण्यशानियों को ही इष्ट-समागम प्राप्त होते हैं ।
- पुण्य का अन्त होने पर देव भी परम दुःख प्राप्त करते हैं ।
- पुण्यरहित प्राणी की रक्षा नहीं होती ।
- पुण्योदय से मनुष्यों को सभी दुर्लभ वस्तुएं मिल जाती हैं ।
- पुण्योदय से पुण्यात्माओं को सुख के भण्डार मिलते हैं ।
- पुण्य के फल से यह जीव उच्चपद को प्राप्त करता है ।
- पुण्य के प्रभाव से पुरुष धकेला ही जड़ को जोत सेता है ।
- पुण्यक्षीण होने पर इन्द्र भी च्युत हो जाता है ।
- मनुष्य की पुण्यासक्ति ही एकमात्र अमंशनीय एवं मुक्तिमुख की दायिनी है ।
- अपना पुण्य ही रक्षा करता है ।
- पुण्योपाजित सत्कर्म के प्रभाव से परमोदय होता है ।
- पुण्य से सुख और पाप से दुःख प्राप्त होता है ।
- विनय, श्रुत, नील, दयासहित वचन, अमात्म्यं धीर क्षमा ये सब मुक्त (पुण्य) हैं ।
- पुण्य से सब प्रकार के सुख मिलते हैं ।
- विपत्ति में पुण्य ही रक्षा करने में समर्थ है ।
- पुण्य के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।
- पुण्य से कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है ।
- इस लोक में ऐसी कोई दुर्लभ वस्तु नहीं है जो पुण्य से प्राप्त नहीं होती ।
- पुण्य से लोगों को विद्या नीघ प्राप्त होती है ।

५६१	पुण्याज्जयो भवेत् ।	पा. पु. ३.१६८
५६२	गरीवः सुकृतं यस्य किं तस्य स्वाद्दुरासदम् ।	पा. पु. ८.६६
५६३	पुण्यात् किं कुर्मं भुवि ?	पा. पु. ११.३०
५६४	प्रक्षीणपुण्यानां विनश्यति विचारस्तम् ।	म. पु. ६५.१६४
५६५	एकमेव हि कर्तव्यं सुकृतं सुसकारस्तम् ।	म. पु. १६.१४३
५६६	रत्नाकरेऽपि सद्गुरुं नाप्नोत्यक्षुप्तपुण्यकः ।	म. पु. ७६.२१६
५६७	गते पुण्ये कस्य किं कोऽत्र नाहरत् ।	म. पु. ५८.७३
५६८	अशुभात् किं न जायते ।	म. म. २.२१
५६९	विशिष्टो दुरितोद्धवः ।	म. पु. ४७.२१०
६००	अत्राशुभं च पापस्य परिवाको द्रुवतरः ।	म. पु. ४६.२८३
६०१	काक्यं पापिनः कुतः ?	ह. पु. ६१.७५
६०२	अकार्यं न पापितान् ।	म. पु. ७५.५३७
६०३	पापिनो हि स्वभावेन प्राप्नुवन्ति पराभवम् ।	म. पु. ७२.१२६
६०४	विचारविकलाः पापाः कोपिताः किं न कुर्मते ।	म. पु. ७०.३६८
६०५	पापार्थिक न जायते ?	पा. पु. ३.२४६
६०६	पापात् किं जायते शुभम् ?	पा. पु. ४.२२७
६०७	पातकात् पतनं भूषम् ।	ह. पु. १७.१५१
६०८	स्वल्पसम्पन्नितं पापं क्षणस्थुषधयं परम् ।	म. पु. २६.१२६
६०९	कुपुष्यभानां तु विरं सुसप्तता विनाशकाले परतां भजन्ते ।	म. पु. ५५.६४
६१०	सुकृतं प्रथमं सुवीर्यरोवः परपीडाभिरतिर्वचश्च रुधम् ।	म. पु. १२३.१७७



- पुण्य से जय होती है ।
- जिसका पुण्य विशाल हो उसको सब वस्तुएं सुखम होती हैं ।
- संसार में पुण्य से सब कुछ मिलता है ।
- ..... पुण्य क्षीण हो जाने पर विचाररसकित नष्ट हो जाती है ।
- सुख का एकमात्र कारण पुण्य है, वही करना चाहिये ।
- पुण्यहीन मनुष्य को समुद्र में भी उत्तम रत्न प्राप्त नहीं होता ।
- पुण्य क्षय होने पर हर कोई उसकी किसी भी वस्तु को हर लेता है ।
- ..... धनुमकर्म के उदय से कुछ भी हो सकता है ।
- पाप का उदय विविध होता है ।
- ..... पाप का फल इस लोक तथा परलोक दोनों में ही बुरा होता है ।
- पापी के दया नहीं होती ।
- ..... पापियों के लिए कोई भी कार्य अकरणीय नहीं है ।
- पापी लोग अपने पाप से पराभव पाते हैं ।
- ..... विचाररहित पापी क्रुपित किये जाने पर सब कुछ कर डालते हैं ।
- पाप के उदय होने पर सब कुछ हो सकता है ।
- ..... पाप से शुभ की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।
- पाप से पतन निश्चित है ।
- संचित किया हुआ थोड़ा सा पाप भी परमबुद्धि को प्राप्त होता है ।
- ..... पुण्यहीन मनुष्यों के विनाश के समय अपने समर्थ साथी भी पराये हो जाते हैं ।
- ..... अत्यधिक क्रोध, परपीडा में प्रीति और रुखे वचन क्रूर/पाप हैं ।

६११	यन्मम हृष्यते लोके दुःखं तत्पापसंभवम् ।	पा. पु. १७.१८७
६१२	पापक्रियारम्भे सुखमाः सामवायिकाः ।	म. पु. ७४.२१
६१३	महापापकृता पापमस्मिन्नेव फलिष्यति ।	म. पु. ६८.२६७
६१४	कुतोऽप्यपुष्यतः क्षिप्रं चेतनो नरकं व्रजेत् ।	पा. पु. ३६.१७३
६१५	संसाधयन्ति कार्याणि लोपायं पापमीरवः ।	म. पु. ७४.५०७

#### प्रत्यक्ष

६१६	आदर्शोऽपेक्षीयः किं हस्तः कञ्जुभक्तिके ?	पा. पु. ६.५७
६१७	त दर्पणोऽपेक्षीयः किं करकंकलवर्गने ।	म. पु. ४३.१११

#### प्रमाण

६१८	कालस्मोक्षेवको पुण्यः दीर्घपूजी तिनश्यति ।	ह. पु. ५२.७७
६१९	स्वयमेवात्मनात्मानं क्षिप्तस्वात्मा प्रमादवान् ।	म. पु. ५८.१२६

#### प्रिय

६२०	प्रेयसा विप्रक्षेपो हि ममस्सापान् कल्प्यते ।	म. पु. ६.१४८
६२१	प्रीत्येव लोभना सिद्धिर्बुद्धतस्तु जनकयः ।	पा. पु. ६९.२४
६२२	स्वर्मायते महारश्ममपि प्रियसमागमे ।	पा. पु. ८०.८२

#### बंध/मुक्ति

६२३	बंध संसारकारणम् ।	म. पु. ५८.१४
६२४	बन्धात् खेदो हि जायते ।	पा. पु. १७.१४१
६२५	बन्धो न हि सतां मुचे ।	म. पु. ३६.६७
६२६	कुटुम्ब बंधकारणम् ।	च. न. ५.३

- संसार में जो भी दुःख दिखाई देता है वह सब पाप का फल है ।
- पाप कर्मों के भारम्भ में सहायक सुख हो जाते हैं ।
- महापापियों का पाप इसी लोक में फल दे देता है ।
- किसी भी पाप के उदय से यह प्राणी शीघ्र ही नरक में चला जाता है ।
- पापभीरु योग्य उपाय से ही कार्यसिद्धि करते हैं ।

— हाथ कंगन को धारसी क्या ?

— हाथ कंगन को धारसी (दर्पण) की आवश्यकता नहीं होती ।

— समय की उपेक्षा करनेवाला दीर्घसूत्री मनुष्य नष्ट होता है ।

— प्रमादी पुरुष अपनी आत्मा का स्वयं ही हनन करता है ।

— प्रियजनों का विरह मन को संताप देनेवाला होता है ।

— कार्य की सिद्धि प्रीति से ही होती है, युद्ध से तो केवल नरसंहार ही होता है ।

— प्रियजन का समागम रहते हुए महाजन भी स्वर्ग के समान जान पड़ता है ।

— बंध संसार का कारण है ।

— बंध से खेद होता ही है ।

— बंध सज्जनों के लिए आनन्दकारी नहीं होता ।

— कुटुम्ब बंध का कारण है ।

६२७	विना संगपरित्यागाज्ज्ञातवाना न प्रवर्धति ।	अ. अ.	५.७
६२८	मोहासविषयेभ्योऽभ्यसाहितं चासुभाकरम् ।	अ. अ.	५.८
६२९	कर्मभवेन जीवानां संघातोऽत्र भवार्णवे ।	अ. अ.	५.८३
६३०	अव्यक्तो अव्यक्तोपमाः ।	अ. अ.	५.१००
६३१	निर्वास्तान्नापरं किञ्चिच्छास्वतं तमं दृश्यते ।	अ. अ.	५.७
६३२	तयो रत्नत्रयेभ्योऽप्यद्वितं चासु न विद्यते ।	अ. अ.	५.८
६३३	संकरेण तत्तां नूनं मुक्तिर्भीर्जायतेतराम् ।	अ. अ.	५.८४
६३४	रत्नत्रयात्परो भाव्यो मुक्तिमार्गो हि विद्यते ।	अ. अ.	१८.६
६३५	संकरेण विना मुक्तिः कुतो मुक्तेर्विना मुक्तम् ।	अ. अ.	१८.२१
६३६	प्राप्यते येन निर्वाणं किमभ्यसास्य दुष्करम् ।	अ. अ.	५५.५५

### भक्ति

६३७	इष्टं करोति भक्तिः सुदुष्टा सर्वत्रभावबीजरनिरता ।	अ. अ.	१२३.१६४
६३८	किमेष्टमभ्यसासुख्यं कस्माच्च नेन विद्यते ।	अ. अ.	६.२०२
६३९	प्रारम्भाः सिद्धिमाप्नुयन्ति पूज्यपूजानुरस्तथाः ।	अ. अ.	४६.२४३
६४०	सत्कीर्तनमुपास्वादसक्तं हि रत्नं स्मृतम् ।	अ. अ.	१.३०
६४१	प्रयाति कुरितं कूरं महापुरुषकीर्तनात् ।	अ. अ.	१.२४
६४२	लेष्टावोष्टौ च तावेव यौ सुकीर्तनवर्तिनौ ।	अ. अ.	१.३१
६४३	मन्त्रः ॥ योऽनुबन्धिनी ।	अ. अ.	७.२७९

### भोजन

६४४	पुण्यवर्चनमारोग्यं विद्याभुक्तं प्रसस्यते ।	अ. अ.	५३.१४१
-----	---	-------	--------

- परिग्रहत्याग के बिना कभी भी आजा/तृष्णा नष्ट नहीं होती ।
- मोह और इन्द्रिय-विषयों के सिवाय अन्य कोई अहित और प्रसुप्त करनेवाला नहीं है ।
- कर्मों के आस्रव से जीवों का संसार-सागर में पतन होता है ।
- बन्धुजन बंधनों के समान हैं ।
- मोक्ष के सिवाय और कोई आम्बुल सुख दिसाई नहीं देता ।
- तप और रत्नत्रय के अतिरिक्त हितकारी (मुक्तिसाधक) अन्य कोई नहीं है ।
- संवर के द्वारा ही सत्पुरुषों को मुक्तिभी की प्राप्ति होती है ।
- रत्नत्रय के सिवाय अन्य कोई दूसरा मुक्ति का मार्ग नहीं है ।
- संवर के बिना मुक्ति नहीं हो सकती और मुक्ति के बिना सुख नहीं मिलता ।
- जिससे निर्धारण (मोक्ष) मिलता है उससे अन्य कोई भी कार्य होना कठिन नहीं है ।
- सर्वज्ञदेव की भावपूर्ण सुदृढ़ भक्ति इष्ट की पूर्ति करती है ।
- जिनेश्वरभक्त्या के समान कोई और वस्तु कल्याणकारी नहीं है ।
- पूज्य पुरुषों की पूजा से आरंभ किये हुए कार्य अवश्य ही सफल होते हैं ।
- सत्पुरुषों के कीर्तनरूपी रस का कीर्तन करनेवाली रसमा ही रसमा है ।
- महापुरुषों के कीर्तन से पाप दूर हो जाता है ।
- श्रेष्ठ श्रेष्ठ वे ही हैं जो सत्पुरुषों का कीर्तन करने में लगे रहते हैं ।
- भक्ति कल्याणकारिणी होती है ।
- पृथ्वर्षक और आरोग्यदायक दिवाभोजन प्रशंसनीय है ।

## मन

६४५	विचित्रास्मिन्सर्वस्यः ।	ह. पु. २४.७४
६४६	विद्याधर्माङ्गगाह्यश्च जायतेऽवहितात्मनाम् ।	ग. पु. २६.७
६४७	तत्सोहादे यथापत्सु सुहृद्भिरनुभूयते ।	म. पु. ७५.५७६
६४८	सोको दुर्घोहविसोऽयम् ।	ग. पु. ७२.६५
६४९	विद्या हि मनसो नतिः ।	ग. पु. ४४.६५
६५०	तुल्येऽत्र मनः कृत्यभिन्नकालेन को कुरुः ?	ग. पु. २५.१६५
६५१	सर्वासाध्वेन सुशीला मनःसुद्धिः प्रकल्पते ।	ग. पु. ३१.२३३
६५२	मनःसुद्धिरेकात्र सर्वाभीष्टप्रदा सताम् ।	ब. अ. १५.१६२
६५३	कावलीभाविष्यत्स्य मोहोऽनात्मन्यसे मनः ।	ग. पु. ११.१३७

## मध्यस्थ

६५४	मध्यस्थः को न लीयति ?	पा. पु. ७.१७
६५५	मध्यस्थः कस्य न द्विषः ?	म. पु. ५१.६२
६५६	लीयतावानां माध्यस्थ्यमपि तापकम् ।	म. पु. २७.१००

## महापुरुष

६५७	महीजोभात् किं क्षुभ्यति महार्जवः ।	पा. पु. १०.६०
६५८	न को वेत्ति महतां चरितं भुवि ?	पा. पु. २.११३
६५९	दुर्जनः स्त्रियमानोऽपि महान्मो यति विद्वियाम् ।	पा. पु. १७.१२३
६६०	महान् हि महतः सत्ता ।	पा. पु. ७.२७१
६६१	वर्द्धयन्ति महास्थानः पादसग्नानपि द्विषः ।	म. पु. ६३.१३३

- चित्तवृत्तियां विचित्र होती हैं ।
- विद्या और धर्म में रति (प्रवेश) स्थिरचित्तवालों को ही होती है ।
- सीहादे वही है जिसका अनुभव मित्रजन प्रापति के समय करें ।
- नोनों के चित्त को समझना कठिन है ।
- मन की गति विचित्र होती है ।
- गुणों में मन लगाना चाहिये, इन्द्रजाल से कोई लाभ नहीं है ।
- सब सुखियों में मन की सुखि ही प्रसस्त है ।
- सत्पुरुषों के पास ही सुखि ही प्राप्त होकर वे सभी सुखों को लेनेवाली है ।
- काम और क्रोध से अभिभूत लोगों का मन मोह से प्राकान्त हो जाता है ।
- मध्यस्थ दुःखी होता ही है ।
- मध्यस्थ सबको प्रिय होता है ।
- तीव्र प्रतापियों की मध्यस्थता भी संतापकारी होती है ।
- नदी के क्षोभ से क्या समुद्र क्षुब्ध नहीं होता ।
- संसार में महापुरुषों के चरित्र को सब जानते हैं ।
- दुर्जनों से सताये जाने पर भी महापुरुष विकार को प्राप्त नहीं होता ।
- महापुरुषों के मित्र महापुरुष ही होते हैं ।
- महापुरुष चरणों में पड़े लक्षुओं की भी वृद्धि करते हैं ।

६६२	अनुवर्तनसाध्या हि महतां चित्तश्रुतयः ।	म. पु. ३४.८७
६६३	गणयन्ति महास्तः किं कूटोपद्रवमल्पवत् ।	म. पु. ४३.२८
६६४	महतां हि मनोवृत्तिः मोत्सेकपरिरम्भिणी ।	म. पु. ३७.१३
६६५	महाभवे समुत्पन्ने महतोऽप्यो न सिध्यति ।	म. पु. ७४.२६३
६६६	न महाम् सहतेऽभिभूतिम् ।	म. पु. २८.१७९
६६७	किमसाध्यं महौघसाम् ।	म. पु. २६.७६
६६८	पीरस्त्वैः लोभितं मार्गं को वा नाभुजैरुच्यते ।	म. पु. १.३१
६६९	महतां चेष्टतं विमं जनश्रम्युत्तिहोर्षसाम् ।	म. पु. १.१८६
६७०	महतां चेष्टा वरायैव मितवैतः ।	म. पु. १.१८८
६७१	स्वमिसोनामतिक्रान्तिः महतां सुखं परम् ।	म. पु. ५.२७७
६७२	विमत्सराणि चेतांसि महतां परमृद्धिषु ।	म. पु. ६४.२२
६७३	अशिम्यं महतां मेघम् ।	म. पु. ३६.११४
६७४	महतां संभयात्मनं वाप्सीक्यो मत्तिना जपि ।	म. पु. १७.२१०
६७५	महतां पुण्याणां चरितं पापनाशनम् ।	म. पु. ३.२६
६७६	महामहान्नः प्रायो रतिवहिरतो धृतम् ।	म. पु. ११५.४२
६७७	महतां ननु सैलीयं यदापदगततारणम् ।	म. पु. १७.३३४
६७८	महतां चेष्टितं विग्रम् ।	म. पु. २५.४७
६७९	कार्यं हि सिद्ध्यति महद्भिरभिष्टितं यत् ।	म. पु. १६.१८४



- महापुरुषों की चित्तवृत्ति अनुकूलवृत्ति (अनुकूल आचरण) से ही ठीक हो जाती है ।
- महापुरुष तुच्छ मनुष्यों के छोटे-छोटे उपद्रवों की परवाह नहीं करते ।
- महापुरुषों की मनोवृत्ति अहंकार का स्पर्श नहीं करती ।
- महाभय के सामने महापुरुष के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं ठहर सकता ।
- महापुरुष दबाव नहीं सहते ।
- महापुरुषों के लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं है ।
- पूज्य पुरुषों के द्वारा बोधित मार्ग का लोग सरसतापूर्वक अनुगमन करते हैं ।
- जगत् का उद्धार चाहनेवाले महापुरुषों की चेष्टाएं विचित्र होती हैं ।
- महापुरुषों की चेष्टा स्वभाव से ही परोपकार के लिए होती है ।
- अपने कर्तव्यों का उत्सर्जन नहीं करना महापुरुषों का अष्ट भूषण है ।
- महापुरुषों के हृदय दूसरों की उन्नति देखकर भी मात्सर्यरहित होते हैं ।
- महापुरुषों का वैयं अधिष्ठित होता है ।
- महापुरुषों के आश्रय से मलिन पुरुष भी पूज्य बन जाते हैं ।
- महापुरुषों का चरित्र वापनाशक होता है ।
- उत्तमपुरुष रागियों से प्रायः अत्यन्त विरक्त होते हैं ।
- आपत्ति में पड़े हुए का उद्धार करना महापुरुषों की शैली है ।
- महापुरुषों की चेष्टाएं विचित्र होती हैं ।
- महापुरुषों के द्वारा प्रारम्भ किया हुआ कार्य पूरा होता ही है ।

## मान/अपमान/विनय

- ६८० मानभङ्गमवाद्बुःखासावर शर्महानिकम् । पा. पु. १७.१४४
- ६८१ परिभवः सोढुम अशक्यो मानसातिनाम् । म. पु. २८.१३६
- ६८२ मानप्राप्ता हि मानिनः । म. पु. ४८.१५५
- ६८३ किं कुर्वन्ति न गच्छिताः ? म. पु. ४८.११७
- ६८४ प्रक्षाममात्रतः प्रीता आयन्ते कामशातिनः । प. पु. १०१.१५
- ६८५ मानमुद्धतः पुंसो ओचितं संसृती सुखम् । प. पु. ८.२४५
- ६८६ जायते प्राणिनां दुःखं परमं च तिरस्कृतेः । प. पु. १७.८६
- ६८७ अपमानास्ततो दुःखान्भरणं परमं सुखम् । प. पु. १७.१४
- ६८८ पुण्यकाम् स नरो लोके यो मातुर्विषये स्थितः । प. पु. ८१.७६
- ६८९ कुलजातानां विनयः सहजो मतः । ह. पु. ४३.१७
- ६९० न योऽङ्गमन्यते यत्र न स तत्र जनोऽर्हति । प. पु. १५.१७५
- ६९१ महतां पाद-संसेवी को वा मानतिमाप्नुयात् । म. पु. ५.१७६

## माया

- ६९२ सद्भावप्रतिपन्नानां बन्धने का विवर्धता ? म. पु. ५६.१५२

## मित्र/मैत्री/मित्र

- ६९३ तदेकोपकृतं पुंसां यत् सद्भाववर्धनम् । ह. पु. २१.३२
- ६९४ सहायभावो हि विपक्षयोगान्महाभयस्योपनिपातहेतुः । ह. पु. ३५.३
- ६९५ तिर्यङ्मोक्षं सुहृद्भावं पालयन्त्येव बन्धुषु । म. पु. ७३.१८
- ६९६ मैत्री संघं वा त्येकचित्ता । म. पु. ४६.४०

- मानसंग से उत्पन्न हुए दुःख के अतिरिक्त अन्य कोई दुःख सुख की हानि करनेवाला नहीं है ।
- मानशाली अपना पराभव सहन नहीं कर सकते ।
- मामी (स्वाभिमानी) मान को ही प्राण समझते हैं ।
- अहंकारी लोग सब कुछ करते हैं ।
- मामी मनुष्य प्रणाम मान से ही प्रसन्न हो जाते हैं ।
- मामी (स्वाभिमानी) का जीवन संसार में सुखी होता है ।
- तिरस्कार से प्राणियों को परम दुःख होता है ।
- अपमान से तथा तज्जन्य दुःख से तो मर जाना परम सुख है ।
- संसार में वह मनुष्य पुण्यात्मा है जो माता के प्रति विनयी होता है ।
- कुलीन मनुष्यों में विनय स्वभाव से हो होता है ।
- जहाँ मनुष्य अपरिचित होता है वहाँ उसका भावर नहीं होता ।
- बड़ों की चरणसेवा से बड़प्पन प्राप्त होता है ।
- सरल परिणामी मनुष्य को ठगने में कोई चतुराई नहीं है ।
- दूसरों के प्रति सद्भाव दिखाना ही मनुष्य का उपकार है ।
- शत्रुओं की परस्पर मित्रता महाम् भय का कारण होती है ।
- तिर्यक भी बन्धुजनों के साथ मैत्रीभाव का पालन करते हैं ।
- एकचित्त हो जाना ही मित्रता है ।

६६७	कणोऽप्रियमपि ग्राह्यं सुहृदामोष्यं यथा ।	प. पु. ७३.४८
६६८	विषकस्य हि साश्लिष्यमक्षितमूषकारणम् ।	ह. पु. २२.१७
६६९	स्वल्प इत्यनया ब्रूय्या कायकिता न वैरिणि ।	ह. पु. ४६.२१२
७००	कालं प्राप्य कणो बह्वे वहेत् सकलविष्टपम् ।	प. पु. ४६.२१२
७०१	सम्बरग्रा म तिष्ठेयुरकुत्वापकुतिं द्विषः ।	म. पु. ४८.६१
७०२	असादुद्धरणीयो हि क्षीयीयानपि कण्टकः ।	म. पु. १४.२५
७०३	असूयेक्य लक्ष्मीयामप्युज्जोऽशो लघुतादृतः ।	म. पु. १४.२५
७०४	नाशुकायं स्वभस्वरिः ।	प. पु. ६.४८५
७०५	गुहो रेणुरिवाक्षितो यजस्वरिवेक्षितः ।	म. पु. १४.२४
७०६	कर्माक्षोऽपरीक्षरी मेहानुमातिदुःखः ।	व. च. १८.१०
७०७	कथितो ह्यरिश्चोपि पुत्रयो विभिगीपुत्रा ।	म. पु. २०.२६०

मोह

७०८	मोहो हि चेतना हरेत् ।	वा. पु. १२.३४२
७०९	रागी वातिद्वयबन्धोऽपि कुटीरं नीलिभक्तुं क्षमः ।	व. च. १२.६५
७१०	मोहिनां तत्किं यदकृत्यं जगत्त्रये ।	व. च. १.२६
७११	कुर्वन्ति मोहान्धाः कर्माभासुष नाशकम् ।	व. च. १.२६
७१२	मोहेन ज्ञप्ते रागद्वेषौ हि कुर्वरौ ।	व. च. १०.६५
७१३	मोहस्य माहात्म्यं यत्स्वाधिविपि ह्येषते ।	व. पु. १२३.३४
७१४	मोहतः कष्टमनुत्तारं प्रपद्यते ।	प. पु. ३६.२०६

- मित्रों के अशुभ वचन भी शौचवि के समान भाव्य हैं ।
- विरोधी की समीपता नेत्रसंकोच का कारण होती है ।
- छोटा समझकर शत्रु की अवज्ञा नहीं करनी चाहिये ।
- समय पाकर अग्नि का एक कण भी समस्त संसार को जला देता है ।
- सिद्धान्तेषु शत्रु अपकार किये बिना नहीं रहते ।
- कांटा चाहे छोटा ही हो बलपूर्वक निकालने योग्य है ।
- शत्रु यदि छोटा हो तो भी वह उपेक्षणीय नहीं है ।
- शत्रु अपने संस्कार का त्याग नहीं करता ।
- उपेक्षित शत्रु चाहे वह छोटा ही हो सांख में पड़े हुए घूलिकण के समान पीड़ाकारक होता है ।
- इस लोक और परलोक में कर्म व इन्द्रियों के विषयों के प्रतिरिक्त प्रतिपुःखवादी शत्रु और कोई नहीं है ।
- बलवान् शत्रु भी दुर्बल हो जाने पर विजिगीषु द्वारा घनायास ही जीत लिया जाता है ।
- मोह बेतना को हर ही लेता है ।
- रागी जीव दरिद्र होते हुए भी अपनी कुटिया को नहीं छोड़ सकता ।
- मोही जनों के लिए तीन लोक में कोई कार्य अकृत्य नहीं है ।
- मोहान्ध मनुष्य इस लोक और परलोक में नाशकारी कर्म करते हैं ।
- मोह से ही रागद्वेष दुर्धर हो जाते हैं ।
- मोह के प्रभाव से जीव आत्महित से अष्ट हो जाता है ।
- मोह से कष्ट और पशुधासाप मिनते हैं ।

७१५ विषयबालेन ज्ञप्यन्ते मोहिनी अन्ताः । प. पु. ११२.८४

७१६ संसारस्य सक्तस्य ह्यस्ति स्थानं यत्र पश्ये । प. पु. १०७.४७

### यशः/अपयशः

७१७ यतो रस्यं प्राप्तेरपि यनेरपि । म. पु. २८.१४०

७१८ स्वायुक्तं हि यतो लोके । म. पु. १४.८६

७१९ प्राप्तेरपि यशः क्लेशं । म. पु. ६८.४८७

७२० अकीर्तिः परमस्यापि याति बुद्धिमुपेक्षितः । प. पु. ६७.१९

### धीमनः/अरा

७२१ क्षरास्यस्मिन् हि धीमनम् । म. म. ११.५

७२२ संप्रसादकान्तकालं धीमनं बहुविधमम् । प. पु. २६.७३

७२३ धीमनं फेनधुनेन लक्ष्यम् । प. पु. ८३.४७

७२४ धीमनं वनवल्लीकामिव पुष्पं परिधत्ति । म. पु. १७.१५

७२५ तादृश्यं कुसुमोपमम् । प. पु. २१.११९

७२६ तावन्मसूर्योऽप्ययमेवमेव प्रवक्ष्यति प्राप्तमरोपराधः । प. पु. २१.१४८

७२७ प्रकृष्टवक्त्रो पृंता धीर्यस्त्येव परिधत्तम् । प. पु. १२.१७२

७२८ जरापातो मूर्धा कण्ठो ज्वरः शीत इमोद्भवम् । म. पु. १६.८६

### रागः/विरागः/द्वेष

७२९ अस्त्वामे धीमिता प्रीतिः जायतेऽनुसंधायते । म. पु. ३५.११८

७३० पुरा संसर्गतः प्रीतिः प्राप्तिनामुपजायते । प. पु. २६.८

७३१ समानेषु प्रायः प्रेक्षोपजायते । प. पु. ४७.६१

७३२ रागात् संजायते कायः । प. पु. ११.१३६

- मोही लोग विषयजाल से बड़ हो जाते हैं ।
- संसार में आसक्त मनुष्य से पद-पद पर भूल होती है ।
- प्राण और धन देकर भी यज्ञ की रक्षा करनी चाहिए ।
- लोक में यज्ञ ही स्थिर रहनेवाला है ।
- प्राण देकर भी यज्ञ खरीदने योग्य है ।
- थोड़ी सी भी अपकीर्ति उपेक्षा करने पर बड़ जाती है ।
- जीवन बुद्धावस्था के मुक्त में होता है ।
- जीवन संख्या-प्रकाश के समान चलायमान है ।
- जीवन फलसमूह के समान है ।
- जीवन बमलता के पुष्पों के समान क्षय होनेवाला है ।
- जीवन फूल के समान है ।
- जीवनरूपी सूर्य भी जरारूपी ग्रहण का आस हो जाता है ।
- बूढ़ पुरुषों की बुद्धि क्षीण हो ही जाती है ।
- बुढ़ापा मनुष्य को जीतञ्चर के समान कष्टदायी है ।
- अयोध्य स्थान में की गई प्रीति पश्चात्तपकारिणी होती है ।
- पूर्वसंलग्न से ही प्राणियों में प्रीति उत्पन्न होती है ।
- प्रायः समानजनों में ही प्रेम होता है ।
- राग से काम उत्पन्न होता है ।

७३३	स्नेहबन्धनमेतानामेतद्धि चारकं गृहम् ।	प. पु. ११०.७२
७३४	रामवत्सं जन्तोः संसारपरिवर्तनम् ।	प. पु. ११.१४२
७३५	प्रोत्थप्रोत्थितमुत्पन्नः संस्कारो जायते स्थिरः ।	म. पु. ५६.६१
७३६	स्नेहस्य दौर्घाऽपि भुजयत् प्रतिभासते ।	म. पु. ४६.१४
७३७	रागो बध्नाति कर्मानि ।	म. पु. ५८.३४
७३८	अपवाधो हि सह्येत रक्तेन न मनोभ्यधा ।	ह. पु. १४.३६
७३९	योनिं यामरगुते जन्तुस्तत्रैव रतिषेति सः ।	प. पु. ७७.६८
७४०	साधर्मिणा हि वास्तव्यं परं स्नेहस्य कारणम् ।	वा. पु. १३.१५७
७४१	सवृक्षाः सदृशेभ्योऽप्यस्ति ।	प. पु. ११८.५८
७४२	सद्भावं हि प्रपद्यन्ते तुल्यभावस्था जना भुवि ।	प. पु. ४७.१७
७४३	निबद्धः स्नेहपातस्तु ततः कुच्छ्रेण मुच्यते ।	प. पु. १०५.२५६
७४४	स्नेहं भगवतुःकानां मूलम् ।	प. पु. ३२.८३
७४५	दुःखोद्यं स्नेहमध्यगम् ।	प. पु. ३१.६५
७४६	सम्भारादोपमः स्नेहः ।	प. पु. २१.११५
७४७	स्नेहस्य किमु दुष्करम् ।	प. पु. २५.४२
७४८	वरिष्ठितः प्रभवः क्षुद्रस्त्यजः ।	ह. पु. १५.४६
७४९	सर्वेषां बन्धानां तु स्नेहमग्नौ महादुःखः ।	प. पु. ११४.४६
७५०	स्थास्तु नास्मान्मैराम्यम् ।	म. पु. ६५.८२
७५१	श्रीदासीम्यमिहानर्थं कुस्ते परमं पुरा ।	प. पु. ४५.८४
७५२	श्रीदासीन्यं सुखं ।	म. पु. ५६.४२



- स्नेह-बंधन से आवद्ध मनुष्यों के लिए घर बन्दीगृह के समान है ।
- प्राणियों का संसारपरिभ्रमण रागवश होता है ।
- राग और द्वेष से उत्पन्न संस्कार स्थिर हो जाते हैं ।
- रागी पुरुष के दोष भी गुण के समान जान पड़ते हैं ।
- रागी जीव कर्मों को बांधता है ।
- रागी मनुष्य अपनी कीर्ति को तो सह सकता है परन्तु मन की व्यथा को नहीं ।
- प्राणी जिस मोहि में जाता है उसी में रत हो जाता है ।
- साधर्मियों का आत्मत्व निश्चय से स्नेह का परम कारण होता है ।
- समान लोगों में ही अनुरक्ति होती है ।
- पृथ्वी पर समान अवस्थावाले मनुष्य ही सम्भाव (पारस्परिक प्रीति-भाव) को प्राप्त होते हैं ।
- स्नेहकपी पाश से बंधा प्राणी कठिनता से छूट पाता है ।
- सांसारिक दुखों का मूलकारण आसक्ति है ।
- स्नेहबंधन दुष्प्रेष है ।
- स्नेह सन्ध्या की लालिमा के समान है ।
- स्नेह के लिए कोई कार्य दुष्कर नहीं है ।
- परिचित स्नेह कठिनाई से ही छूटता है ।
- सभी बंधनों से स्नेह का बंधन अधिक रूढ़ होता है ।
- अज्ञानपूर्ण वैराग्य स्थिर नहीं रहता ।
- उदासीनता बड़ी अनर्थकारिणी है ।
- उदासीनता ही सुख है ।

७५३	किं न कल्पन्ति वीरिणः ?	पा. पु. १२.१४५
७५४	हृष्यान्मस्तुविनाशनम् ।	प. पु. ११.१३६
	रूप	
७५५	मनोज्ञं प्रायसो रूपं वीरस्यासि मनोहरम् ।	प. पु. ६.१६७
७५६	राजते चाकम्भावाणां सर्वेष्वपि हि चाकम्भा ।	प. पु. ४६.५
७५७	यद्यस्ति स्वगता लोभा किं किलालंकृतः कुतम् ।	म. पु. १७.४१
७५८	सम्प्राप्यगमिष्या रूपलोभा ।	म. पु. १७.१४
	लोक	
७५९	अन्तुना सर्ववस्तुष्वपि चाकम्भते दीर्घजीवितम् ।	प. पु. १७.११४
७६०	लोकोऽयं विप्रवेष्टितः ।	प. पु. १६.७६
७६१	लोको हि परमो बुधः ।	प. पु. ४४.७१
७६२	लोकः सत्यमेव नवप्रियः ।	म. पु. १३.५४
७६३	को ह्यस्य जगतः कर्तुं सक्नोति मुक्तबन्धनम् ।	प. पु. ६७.१२५
	लोभ/लौक/सम्तोष	
७६४	लोभो महाव्याधः ।	पा. पु. १२.१३६
७६५	लोभात् किं न प्रजायते ।	पा. पु. १२.१३६
७६६	लोभी दुःखं प्राप्नोति वारुणम् ।	प. पु. ५३.५३
७६७	सुख्यो न सञ्जते पुण्यम् ।	म. पु. ५४.१०८
७६८	असम्ये न करोति किम् ?	म. पु. ६२.४०
७६९	अर्थादिभिरकर्तव्यं न लोके नाम किञ्चन ।	म. पु. ४६.५५
७७०	नास्मिन् स्थितिपासनम् ।	म. पु. ६२.३३६

..... देरी सब कुछ कह देते हैं ।

— वृष से प्राणियों का विनाश होता है ।

..... सुन्दर रूप प्रायः धीर-वीर मनुष्य के भी मन को हर लेता है ।

..... सुन्दर भाववालों में सभी प्रकार से सुन्दरता रहती है ।

— यदि स्वयं सुन्दर है तो उसे असंकारों की आवश्यकता नहीं है ।

..... रूप की शोभा सम्प्रदायकालीन साक्षिमा के समान है ।

..... प्राणी सब वस्तुओं से पहले दीर्घजीवन की कामना करता है ।

— लोक विविचिताओं से तिरा है ।

..... लोक ही परम गुरु है ।

..... वस्तुतः लोक नवीनताप्रिय होता है ।

— संसार का मुक्त कोई बन्ध नहीं कर सकता ।

— लोभ महापाप है ।

— लोभ से सब कुछ (भनबं) संभव है ।

— लोभी दारुण दुःख पाता है ।

— लोभी को पुण्य की प्राप्ति नहीं होती ।

— अलम्ब को पाने के लिए मनुष्य सब कुछ करता है ।

— धनलोलुपी के लिए संसार में कुछ भी अकरणीय नहीं है ।

— स्वार्थी भयंदा का पालन नहीं करते ।

७७१	मन्तोवचनकायनामकौटिल्यं विमुक्तता ।	वा. पु. १८.१८६
७७२	मुचिरसङ्ख्यतरः ।	म. पु. १६.१०५
७७३	मर्त्यलोके सुखं तद् यच्चित्तसन्तोषसप्तमम् ।	ह. पु. ११.६३
७७४	अमृते वा धृतिः सा किं क्वचिदभ्यत्र लक्ष्यते ।	म. पु. १५.११

### वचन/उक्ति/मीम

७७५	सतां हि कुलविद्येयं यम्भनोहरभाषणम् ।	ग. पु. ८.४६
७७६	धरपीडाकरं वाक्यं वर्जनीयं प्रयत्नतः ।	ग. पु. ५.४४१
७७७	प्रमाणभूत वाक्यस्य वस्तुप्रत्याख्यतो भवेत् ।	म. पु. ५७.१८७
७७८	पदवाच् विधिविधाकिम्यः प्रागनालोचितीक्ष्णः ।	म. पु. ४६.५७
७७९	असत्यतो भवेन्नूनं किल्बिषं कमकारणम् ।	वा. पु. २०.२२६
७८०	सहचो हितमन्ते स्वाद्यमुरायेव मेववाचम् ।	म. पु. ७४.५२०

७८१	मीमं सर्वार्थसाधनम् ।	ह. पु. ६.१२६
-----	-----------------------	--------------

### वस्तु/पदार्थ

७८२	कृतका हि विनस्वराः ।	ह. पु. ६१.१८
७८३	किं शब्द म विनस्वरम् ?	म. पु. १७.१३
७८४	पुष्पी पुष्पवयस्तस्य नासस्तन्मास इध्यते ।	म. पु. ४८.२६
७८५	वाङ्मत्तास्यगतं रत्नं करात् किं पुनरीक्ष्यते ।	ग. पु. ४५.७५
७८६	विनाशो हि स्वभावो वस्तुनः ।	म. पु. ६.२११
७८७	कामहानिर्न कर्त्तव्या हस्तासम्भेऽतिबुद्धिमे ।	म. पु. ६२.४४२

- मन-वचन-काय की सरलता ही विमुक्तता है ।
- कुछ व्यक्ति (निर्लोभ व्यक्ति) असंध्य होता है ।
- मनुष्यलोक में सुख वही है जो चित्त को सन्तुष्ट करनेवाला हो ।
- अमृतपान से जो संतोष होता है, वह अन्यत्र संतोष नहीं है ।

- मधुर भाषण सत्पुरुषों की कुलविद्या है ।
- दूसरे प्राणियों को पीड़ा देनेवाला वचन प्रयत्नपूर्वक वर्जनीय है ।
- वचन की प्रामाणिकता वक्ता की प्रामाणिकता से होती है ।
- पहले बिना विचारे वचन का फल बाद में विष के समान होता है ।
- असत्य से पाप कर्म का बंध होता ही है ।
- सज्जनों के वचन रोमी मनुष्य को अधीश्वर के समान परिणाम में हितकारी होते हैं ।
- भीम से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ।

- कृत्रिम वस्तुएं अवश्य ही नष्ट हो जाती हैं ।
- इस संसार में सब वस्तुएं विनश्वर हैं ।
- गुणी कुलों से एकीभूत होता है अतः गुणी का नाश होने पर गुणों का भी नाश हो जाता है ।
- हाथ से बड़वानस में गया हुआ रत्न फिर नहीं मिल सकता ।
- वस्तु का स्वभाव विनाशशील है ।
- अतिदुर्लभ वस्तु यदि हाथ के निकट हो तो उसकी प्राप्ति में विलम्ब करना ठीक नहीं ।

७८८	विचित्रा ब्रह्मसक्तयः ।	म. पु. ७१.३४६
७८९	अत्र नाभंगुरं किञ्चिद् ।	म. पु. ६३.२६५
७९०	अस्थस्य बहुभौत्येन गृह्यतो न हि दुर्लभम् ।	म. पु. ५६.११५
७९१	नवं भूतिकरं नृणाम् ।	ह. पु. २१.३७
७९२	अभिः पादु रस्तिर्गृहीतौ नयेत् ।	म. पु. ५५.३८

### वर्ण/जाति

७९३	न जातिमात्राद् वैशिष्ट्यं ।	म. पु. ४२.१८८
७९४	न जातिर्गहिता काचित् ।	म. पु. ११.२०३

### विद्वान्

७९५	पण्डिताः समर्थास्ततः ।	म. पु. ११.२०४
७९६	प्रायः धेयोर्जयमो नृणाः ।	म. पु. ११.५
७९७	तदेव ननु पाण्डित्यं धर्तृसारात् समुद्यरेत् ।	म. पु. ८.८६
७९८	गुर्जरेव प्रीतिः सर्वत्र कीमताम् ।	म. पु. ६७.३१८
७९९	विद्वान्निगितस्तो हि ।	म. पु. ९८.१४६
८००	विद्वान्तः प्रमार्शं जगतः परम् ।	म. पु. ६६.४९
८०१	नो पृथग्यनवायेन संशोभं याति कोविदाः ।	म. पु. ६७.३०

### व्रत

८०२	हितं नैव जीवितं व्रतभजनात् ।	म. पु. ७४.४०८
८०३	नोत्सृज्यन्ते नियोगं स्वं भगस्त्विमः ।	म. पु. ७३.१५
८०४	न व्रतादपरो बन्धुनक्रितादपरो रिपुः ।	म. पु. ७६.३७४
८०५	व्रतेन जायते सम्पत् ।	म. पु. ७६.३७८

- द्रव्य की शक्तियाँ विचित्र होती हैं ।
- इस संसार में कोई भी वस्तु अविनाशक नहीं है ।
- बहुमूल्य वस्तु से अल्पमूल्य की वस्तु सरोदना कठिन नहीं है ।
- नवीन वस्तु मनुष्यों को धर्म देनेवासी होती है ।
- नवीन वस्तु अधिक प्रिय होती है ।
- केवल जाति से ही विशिष्टता नहीं होती ।
- कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है ।
- पण्डित समदर्शी होते हैं ।
- पण्डितजन आत्मकल्याणार्थी होते हैं ।
- पण्डित्य वही है जो संसार से उद्धार कर दे ।
- विद्वानों की सब जगह मुक्तों से ही प्रीति होती है ।
- संकेत समझनेवाले ही विद्वान् होते हैं ।
- जगत् में विद्वान् लोग ही परम प्रमाण हैं ।
- साधारण मनुष्यों की बातों पर विद्वान् धृक्च नहीं होते ।
- अतमग कर जीवित रहना हितकारी नहीं है ।
- मनस्वी पुरुष अपने नियम का उत्सर्जन नहीं करते ।
- व्रत से बढ़कर कोई बंधु और अव्रत से बढ़कर कोई शत्रु नहीं है ।
- व्रत से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।

८०६	अथाभिदेवताभिस्तु वसवाभामिभूयते ।	म. पु. ७६.३७५
८०७	अरतोऽपि नमन्त्येव वसवन्तं धर्मो नकम् ।	म. पु. ७६.३७६
८०८	वयोवृद्धो अताड्डीनस्तृणवद् गम्यते धर्मः ।	म. पु. ७६.३७६
८०९	वसो सफलवृद्धो वा निर्धतो वन्मयवृषवत् ।	म. पु. ७६.३७३
८१०	वरं प्राणपरित्यागो वसतभङ्गमस्य जीवितम् ।	म. ध. १६.११२

### व्यवहार

८११	प्रायो मांगलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ।	प. पु. ३४.४३
८१२	वाधुकु गो युक्तं व्यवहर्तुं मसाम्प्रतम् ।	प. पु. ८.२२३

### व्यसन

८१३	कुर्याद् व्यसनोपहतो नु किम् ?	ह. पु. २५.२२
८१४	घृतेन याति निःशेषं यसो जीवाववावतः ।	पा. पु. १६.११६
८१५	सर्वनिर्बकरं कृतम् ।	पा. पु. २६.११७
८१६	घृतसर्वं पात्रं न घृतं न भक्षिष्यति ।	पा. पु. १६.११६
८१७	घृतं कुम्भरक्तुःसकम् ।	पा. पु. १६.११८
८१८	नापरं व्यसनं कृतान्निष्ठम् ।	म. पु. ५६.७५
८१९	को न वा पतति कारुणीप्रियः ।	ह. पु. ६३.३०
८२०	आधित्य कारुणी रक्तः को न मज्जस्थमोवतिम ।	म. पु. ४४.२६२
८२१	भासभुक्तेर्मिदृशस्य सुगतिर्हस्त्यतिमी ।	प. पु. २६.६८
८२२	यो मांसं भक्षयत्यधमो नरः ।	प. पु. २६.७४

### शक्ति

८२३	सया विश्ववर्नीना हि विभृता भुवि वर्तते ।	ह. पु. ५६.८५
-----	--	--------------



- उद्य देव भी व्रती का तिरस्कार नहीं करते ।
- व्रती पुरुष अवस्था में कम हो तो भी बृद्धजन उसे नमस्कार करते हैं ।
- लोभ व्रतरहित वयोवृद्ध को तृण के समान समझते हैं ।
- व्रती फलसहित वृक्ष के समान है और अव्रती फलहीन वृक्ष के समान ।
- व्रतभंग कर जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

- लोग प्रायः भांगलिक व्यवहार में ही प्रवृत्त होते हैं ।
- बन्धुओं के साथ अनुचित व्यवहार करना उचित नहीं है ।
- व्यसनी मनुष्य सब कुछ कर सालता है ।
- घूत से लोकापवाद के कारण सम्पूर्ण यत्न नाश हो जाता है ।
- घूत सब धनधौ की जड़ है ।
- घूत के समान पाप न हुआ है और न होगा ।
- घूत दुर्धर दुःखदायी होता है ।
- घूत से बढ़कर अन्य कोई निकृष्ट व्यसन नहीं है ।
- शराबी का पतन होता ही है ।
- शराबी की अधोगति होती ही है ।
- जो मांसभक्षण नहीं करता उत्तमवर्ति उसके हाथ में ही है ।
- जो नर मांस खाता है वह अधम हो जाता है ।
- संसार में सच्ची प्रभुता सबका हित करनेवाली होती है ।

८२४	आश्वत्थसहने सिंहे सुखायस्ते कियम्भवाः ।	पा. पु. ७.२६
८२५	समर्थो न जहास्याशु निजं शीलं कदाचन ।	पा. पु. १७.११६
८२६	सत्त्वस्य को भरः ?	पा. पु. ३१.१११
८२७	आलोगिरिवित्तस्यस्य किं करोतु भवानपि ।	पा. पु. २६.४६
८२८	सुसुप्तस्य प्रपञ्चो दुस्तम्यन्मुक्तमिव ।	पा. पु. १०२.३५
८२९	गलेन्द्रभुं मेधंरभी न कम्पते ।	पा. पु. ६६.८७
८३०	न कम्बुके कोपमुपैति सिंहः ।	पा. पु. ६६.८९
८३१	न सागरः शुष्यति सूर्यरश्मिभिः ।	पा. पु. ६६.८७
८३२	नालोः संकोभमायाति सिंहः ।	पा. पु. ६६.४६
८३३	ता एव सत्त्वो वा हि लोकद्वयहितावहाः ।	पा. पु. ५०.३७
८३४	सदसत्कार्यमिहृत्तो नृत्तिः सवसतोः समा ।	पा. पु. ४४.६
८३५	तारयितुं शक्ता न शिता सलिले शिताम् ।	पा. पु. १४.२३२
८३६	बलवद्भिर्विरोधस्तु स्वपराभवकारणम् ।	पा. पु. २८.१३६
८३७	भक्षितं हि बलीवांशो बलिनामपि किञ्चिदे ।	पा. पु. ६४.१११
८३८	ननु सिंहो गुहां प्राप्य महाश्रेयसि मृली ।	पा. पु. ६६.२६
८३९	न हि नष्टूपयान् हन्तुं वेनतेयः प्रवर्तते ।	पा. पु. ८.१६०
८४०	किमेभिः क्रियते कार्यैः संश्रुयापि गुरुमतः ?	पा. पु. ८.१२६

### शील

८४१	शीलतो बलविर्नृणां शस्त्रतो गोप्यवामते ।	पा. पु. २१.६२
-----	---	---------------

- दुर्बल सिंह के जन्म होने पर हरिण थोड़ी देर भी सुखी नहीं रह सकते ।
- समर्थ लोग अपना स्वभाव कदापि नहीं छोड़ते ।
- समर्थ के लिए कुछ भी भार नहीं है ।
- पहलू के बिल में स्थित चूहे का सिंह कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता ।
- सुकुमार प्राणी थोड़े कारण से भी दुःखी हो जाते हैं ।
- बेल के सीमों से पृथ्वी नहीं कांपती ।
- सिंह सियार पर क्रोध नहीं करता ।
- सूर्य की किरणों से समुद्र नहीं सूखता ।
- सिंह चूहे पर क्षुब्ध नहीं होता ।
- शक्तिमां वे ही हैं जो दोनों लोकों में हितकारी हों ।
- प्रबल और बुरे कार्य करने की शक्ति सज्जन और दुर्जन दोनों में समान होती है ।
- शिला भी पानी में पड़ी शिला को नहीं तैरा सकती ।
- बलवान् पुरुषों के साथ विरोध अपने पराभव का कारण होता है ।
- संसार में एक से एक बढ़कर बलवान् होते हैं ।
- निश्चय ही सिंह महापर्वत की गुफा पाकर सुखी होता है ।
- गदग़ जलवासी निविध साँपों को मारने का यत्न नहीं करता ।
- बहुत से कीने मिलकर भी गरुड़ का कुछ बिगाड़ नहीं सकते ।
- शील के प्रभाव से समुद्र भी मनुष्यों के लिए क्षणभर में गाय के खुर के समान हो जाता है ।

८४२	शीलशुद्धो मृतः प्राप्नोति सुखी स्याद् भवे भवे ।	पा. पु. २१.६३
८४३	सर्वसामेव सुखीनां शीलशुद्धिः प्रशस्यते ।	ह. पु. १२.३१
८४४	शीलेन जायते नाकः ।	वर. पु. २१.८६
८४५	शीलं चक्रिपदप्रवम् ।	पा. पु. २१.८६
८४६	ब्रह्मचर्यस्मिन् शीलं ।	पा. पु. १.१२४
८४७	शीलं सद्गुणपालनम् ।	पा. पु. १.१२४
८४८	शीलाद् वासन्धमायान्ति सुरासुरनरेश्वराः ।	पा. पु. २१.८८
८४९	शीलेन सम्भवः सर्वः ।	पा. पु. १७.२९३
८५०	शीलतो नामरं शुभम् ।	पा. पु. १७.२९३
८५१	जन्मस्य साधुशीलस्य द्वारिद्र्यमपि भूयजम् ।	व. पु. ४६.२३
८५२	शीलं हि रक्षितं यस्माद् आत्मानमनुरक्षति ।	म. पु. ४१.१०६
८५३	मैत्र्युं शीलवती क्षितं न भयं सम्मयेन ।	व. पु. ६८.१६०
८५४	अभिभूतिः तशीलानामप्येव कलवायिनी ।	म. पु. ६८.२३०
८५५	शीलस्य फलनं कुर्वन् यो जीवति स जीवति ।	व. पु. ४६.६५
८५६	पुमान् जन्मद्वये शंसा सुशीलः प्रतिपद्यते ।	व. पु. ७५.५८

### संकल्प

८५७	अन्तरंगो हि संकल्पः कारस्व पुण्यपापयोः ।	व. पु. १४.७६
८५८	संकल्पादनुभाद् दुःखं प्राप्नोति शुभतः सुखम् ।	व. पु. १४.५१

### संयोग-वियोग

८५९	संयोगा विप्रयोगस्ताः ।	व. पु. ८.७७
८६०	भंसुर संगमः सर्वः ।	म. पु. ४६.१६१

- शीलयुक्त प्राणी मरने पर प्रत्येक भव में सुखी होता है ।
- सारी सुखियों में शीलसुद्धि प्रशंसनीय है ।
- शील से स्वयं मिलता है ।
- शील चक्रवर्ती पद का दाता है ।
- ब्रह्मचर्य ही शील है ।
- सद्गुणों का पालन करना शील है ।
- सुर-असुर और नासक भी शील के प्रभाव से दास बन जाते हैं ।
- शील से सब सम्पत्तियां मिल जाती हैं ।
- शील सबसे बड़ा शुभ है ।
- शीलवान् मनुष्य की दरिद्रता भी आभूषण है ।
- प्रयत्नपूर्वक रक्षा किया हुआ शील ही आत्मा की रक्षा करता है ।
- शीलवती स्त्री का चित्त कामदेव के द्वारा नहीं भेदा जा सकता ।
- शीलवानों का तिरस्कार इसी लोक में कम वे देता है ।
- शील का पालन करते हुए जो जीता है उसी का जीवन सफल है ।
- शीलवान् की दोनों जन्मों में प्रशंसा होती है ।
- अन्तरंग संकल्प ही पुण्य और पाप का कारण है ।
- अशुभ संकल्प से दुःख और शुभ संकल्प से सुख मिलता है ।
- संयोग के बाद वियोग अवश्यंभावी है ।
- सभी संगम क्षणभंगुर हैं ।

८६१	स्वप्न इव भवति चावसंयोगः ।	प. पु. १०.२६
८६२	वरं हि मरणं श्लाघ्यं न विद्योगः सुदुःसहः ।	प. पु. १०५.११
८६३	विषयः स्वयंतुल्योऽपि विरहे नरकायते ।	प. पु. ८०.५२
८६४	प्रियस्य प्राप्तिनो मृत्युर्वरिष्ठो विरहस्तु न ।	प. पु. १०५.८५
८६५	यावज्जीवं हि विरहस्तापं यच्छति चेतसः ।	प. पु. १०५.१२

### संगति

८६६	सती योगः सुभाष्यते ।	पा. पु. १५.२०२
८६७	नाम्यस्तत्संगमाद्वितम् ।	पा. पु. १.१६
८६८	व्याप्तिं धवलात्मतामवचलो हि शुद्धाध्यात् ।	ह. पु. १८.५२
८६९	कुसंगासंगतो नृणां भीक्षिताम्बरधं वरम् ।	पा. पु. २४.१५
८७०	नहि भीषं समाभित्वा जीवन्ति कुलजा मराः ।	प. पु. ५३.२४०
८७१	मिथ्यावृत्तां संगः कवचित्पि न वरम् ।	व. अ. २.१३३
८७२	साधोः संवमभारलोके न किञ्चिद् दुर्लभं भवेत् ।	प. पु. १३.१०१
८७३	अस्ते हि महतां योगः शममप्यशमात्मसु ।	म. पु. ३६.१७७
८७४	किं न शमात्सामुसंयमात् ?	म. पु. ६२.३५०
८७५	भवति किमिह मेघं संप्रयोगाभ्यहृद्भिः ?	म. पु. ६३.५०८
८७६	किं करोति न कस्यार्णं कृतपुण्यसमागमः ?	म. पु. ७३.८६
८७७	तत्संगमः किं न कुर्यात् ?	म. पु. ७४.५४८

### सञ्जन/दुर्जन

८७८	स्मरति न स्थितितः सुजनः ।	ह. पु. ४६.३०
८७९	सञ्जनो हि मनोदुःखं निवेदितमुदस्यति ।	ह. पु. ४५.७६

- सुन्दर वस्तुओं का समागम स्वप्न के समान होता है ।
- दुःसह वियोग से मर जाना अच्छा ।
- विरहकाल में स्वर्ग के समान देश भी नरकतुल्य जान पड़ता है ।
- प्रिय प्राणी की मृत्यु तो अच्छी है किन्तु उसका विरह अच्छा नहीं है ।
- विरह जीवनपर्यन्त चित्त को सन्ताप देता है ।

- सज्जनों की संगति से शुभ की प्राप्ति होती है ।
- सत्संगति से बढ़कर अन्य हितकर नहीं है ।
- पुत्र पदार्थ के आश्रय से दुरा भी अच्छा हो जाता है ।
- कुसंगति में रहकर जीने से मनुष्यों का मरना अच्छा है ।
- कुलीन मनुष्य नीच का आश्रय लेकर जीवित नहीं रह सकते ।
- मिथ्यादृष्टियों का संग कहीं भी अच्छा नहीं है ।
- लोक में साधु-समागम से बढ़कर अन्य कोई दुर्लभ वस्तु नहीं है ।
- महापुरुषों की संगति में कूर जीव भी शांत हो जाते हैं ।
- साधु-समागम से सब कुछ संभव है ।
- महापुरुषों की संगति से सब इष्टसिद्धियाँ होती हैं ।
- पुण्यात्माओं का समागम कल्याणकारी है ।
- सत्संगति से सब कुछ हो सकता है ।

- सज्जन अपनी मर्यादा से कभी विचलित नहीं होते ।
- सज्जन बताने पर मन के दुःख को दूर कर देते हैं ।

८८०	सन्तो विरोधहाः ।	पा. पु. १२.४१
८८१	सन्तो मुनान्न मुञ्चन्ति कुरीभूतेऽपि सज्जने ।	पा. पु. १०.२३१
८८२	प्राणाः सतां न हि प्रारब्धाः कुणाः प्राणाः प्रियास्ततः ।	म. पु. ६८.२२१
८८३	अथयस्ते हि आध्यन्ते ये स्थिता जन्तुपासने ।	पा. पु. ११.४८
८८४	न मोक्षेयूतयस्पृहा ।	म. पु. ४५.१६५
८८५	प्रतिकूलसमाधारा न मद्यस्त्येव साधकः ।	पा. पु. ८.५१
८८६	लिप्तास्तु क्षान्तिसौखादिगुणैर्धर्मपरा नराः ।	म. पु. ४२.२०३
८८७	महारभ्येऽपि भव्यतां भवन्ति सुहृदो जनाः ।	पा. पु. १७.२८७
८८८	विधाय धामभेगं हि सन्तो यान्ति कृतार्थताम् ।	पा. पु. ७६.१६
८८९	न हि मत्सरिणः सन्तो म्हायमार्यानुसारिणः ।	म. पु. ४३.१६२
८९०	सन्तो हि हितभाविनः ।	म. पु. ७०.३२५
८९१	प्रायः कल्पद्रुमस्येव परार्थं वेष्टितं सताम् ।	म. पु. ६५.२६६
८९२	परदुःखेन सन्तोऽगो त्यक्तस्येव महाश्रियम् ।	म. पु. ७१.१७३
८९३	सन्तो विचारानुचराः सदा ।	म. पु. ६८.६४६
८९४	सतां स सहजो भावो यस्तुक्तस्युपकारिणः ।	म. पु. ४७.१९६
८९५	अपकारेऽपि नीचानामुपकारः सतां भवेत् ।	म. पु. ७४.११०
८९६	गुणगुह्यो हि सज्जनः ।	म. पु. १.३७
८९७	दुःखं हि नात्ममायाति सज्जनाय निवेदितम् ।	पा. पु. १७.२३४



- सन्त विरोध मिटानेवाले होते हैं ।
- सज्जनों के परोक्ष होने पर भी गुणवान् गुस्सों को नहीं छोड़ते ।
- सज्जनों को गुण प्राणों से भी अधिक प्रिय होते हैं ।
- जीवों की रक्षा करने में तत्पर लोग ही ऋषि कहलाते हैं ।
- उत्तम पुरुष तुच्छ पदार्थों की इच्छा नहीं करते ।
- साधु लोग विरुद्ध आचरण करनेवाले नहीं होते ।
- धर्मरक्षा भिष्टजन समा, लोच आदि गुणों से युक्त होते हैं ।
- भय्य जीवों को महान् वन में भी भिन्न मिल जाते हैं ।
- सत्पुरुष मानभंग करके ही कृतकृत्य हो जाते हैं ।
- नीतिसारों पर चलनेवाले सत्पुरुष ईर्ष्या नहीं करते ।
- सत्पुरुष हितभाषी ही होते हैं ।
- प्रायः सज्जनों की चेष्टा कल्पवृक्ष के समान परोपकार के लिए ही होती है ।
- सज्जन पुरुष दूसरे के दुःख के कारण महाविभूतियों का भी त्याग कर देते हैं ।
- सज्जन हमेशा सद्बिचारों का अनुसरण करते हैं ।
- सज्जन स्वभाव से ही उपकारियों की स्तुति करनेवाले होते हैं ।
- नीचजनों द्वारा किया गया अपकार भी सज्जनों के लिए उपकार रूप हो जाता है ।
- सज्जन गुण से ही वज्र में होता है ।
- सज्जन को बताया हुआ दुःख नष्ट हो जाता है ।

८६८	उचितकरणकाले न स्वतन्त्रि प्रगल्भाः ।	ह. पु. ३६.६४
८६९	सायस्वते हि प्रशुही-महं न कुर्वन्ति ।	ह. पु. ४०.३१
९००	प्रभवो मितभाषिणः ।	म. पु. ३४.३०
९०१	मुनिश्चितानामपि सभारणां विना प्रवानेन न कार्ययोगः ।	प. पु. ४८.४८
९०२	विचित्रचिन्ताः पुष्पाः ।	प. पु. ११५.६३
९०३	न कस्मोपकुर्वन्ति वित्तदातयाः ?	म. पु. ७६.१८४
९०४	वेति स्वार्थं न वस्तस्य जीवितं पशुना समम् ।	प. पु. ५६.१०३
९०५	अलीकापि हि प्रायो दोषाद्विध्यति सञ्जनाः ।	प. पु. १७.३३६
९०६	कं न कुर्वन्ति सञ्जना रत्नोत्सुकम् ।	प. पु. ८.४८
९०७	पक्षपातो भवत्येव योगिनामपि सञ्जने ।	प. पु. ७.१६०
९०८	अवकारिणि कारुण्यं च करोति न सञ्जनाः ।	पु. पु. ३३.३०६
९०९	प्रत्यामभाप्रसाध्यो हि महतां चेतसः समः ।	प. पु. ४८.३२
९१०	अली कुर्वन्ति लोका हि सत्ताः स्थलितमानसाः ।	पा. पु. १२.२००
९११	गुणबोधसमाहारे दोषान् वृक्षस्त्यसाधनः ।	प. पु. १.६६
९१२	स्नेहो नापीलितात् सत्तात् ।	म. पु. ६१.१४०
९१३	अदोधामपि दोषावर्ता पश्यन्ति रचनां सत्ताः ।	प. पु. १.३७
९१४	मलिनाः कुटिला मुग्धैः वृक्षास्त्याज्या मुमुक्षुभिः ।	म. पु. ७४.३०७
९१५	न विदन्ति सत्ताः स्वैरा युक्तायुक्तविशेषितम् ।	म. पु. ७०.२८६

- चतुर मनुष्य उचित कार्य करते समय कभी नहीं चूकते ।
- विनाश के समय हठी मनुष्य अपना हठ नहीं छोड़ता ।
- प्रभावशाली लोग मितभाषी होते हैं ।
- निश्चयवान् सज्जनों का कार्य भी किसी प्रधान पुरुष के बिना नहीं होता ।
- पुरुष विचित्र चिन्तनाते होते हैं ।
- निर्मल हृदयवाने सबका उपकार करते हैं ।
- जो अपने लाभ को नहीं समझता उसका जीवन पशु के समान है ।
- सज्जन पुरुष प्रायः मिथ्याबोध से भी डरते ही हैं ।
- सज्जनों से मिलने की उत्सुकता सबको होती है ।
- सज्जन के प्रति योगियों का पक्षपात होता ही है ।
- अपकारी पर भी जो करुणा करता है वह सज्जन है ।
- महापुरुषों का मन प्रणाममात्र से शांत हो जाता है ।
- दुरात्मा (दुष्ट पुरुष) लोगों को दुष्ट बना ही देते हैं ।
- असाधु पुरुष गूण और दोषों के समूह में से दोष ही ग्रहण करते हैं ।
- जल की पीड़ित किये बिना स्नेह नहीं मिलता ।
- दुष्ट पुरुष निर्दोष रचना में भी दोष ही देखते हैं ।
- मलिन और कुटिल जन अज्ञानियों द्वारा पूज्य और पुमुक्षुओं द्वारा त्याज्य होते हैं ।
- स्वच्छन्द दुष्ट योग्य और अयोग्य चेष्टाओं में अन्तर नहीं समझते ।

६१६	कुष्ठा हिंसादिदोषेषु निरताः पापकारिणः ।	म. पु. ४२.२०३
६१७	सखो ह्यन्यस्तवासहः ।	म. पु. ६३.४६
६१८	कः प्रत्येति न कुष्ठश्चेत् सद्भिर्निगदितं बधः ।	म. पु. ४७.२५३
६१९	कुष्ठमासीविषं गेहे कर्द्धमान सहेत कः ।	म. पु. ५८.१००
६२०	कुष्ठानां नास्ति कुष्ठरम् ।	म. पु. ६२.३३६
६२१	प्रायः स्तलन्ति चेतांसि महस्त्वपि कुरात्मनाम् ।	म. पु. ३४.२१
६२२	मिर्यति कुर्जति जन्तुर्कुल्कर्मा प्रतिपद्यते ।	प. पु. ६७.३३
६२३	कष्टं कुष्ठविशेषितम् ।	म. पु. ७१.१९६
६२४	कुष्ठेष्वेष्टस्यास्तपुष्यस्य सुतं भावि विमशयति ।	म. पु. ६८.४२६
६२५	गुरतोऽपि न पुनः जले ।	म. पु. ६८.५६२
६२६	मज्जं कर्तुं जलः शयमः श्वपुण्यतदृशः ।	म. पु. १.८६
६२७	मसतां म्रियते चिरं भुत्वा वर्मेकया सतीम् ।	म. पु. १.८६
६२८	मोहो जयति पापिनाम् ।	प. पु. ४८.६५
६२९	निरर्धकं प्रियशतैर्कुर्जती वीर्यसे मतिः ।	प. पु. ६३.२४८
६३०	महद्भिरपि नो दानैरुपजायन्ति कुर्जनाः ।	प. पु. ४८.३२
६३१	न को वाऽथ कुश्चरिवाय कुप्यति ।	म. पु. ४३.६४

### समय

६३२	कृतार्थस्य कालक्षेपो हि निष्कतः ।	ह. पु. ५२.८४
६३३	यान्ति कालानुभावेन मृगयोऽपि कठोरताम् ।	ह. पु. ६.२८
६३४	तमः पतनकाले हि प्रभवत्यपि भास्वतः ।	ह. पु. १४.४०

- पापी लोभ हिंसादि दोषों में लोन होते हैं ।
- दुष्ट दूसरे की स्तुति सहन नहीं कर सकता ।
- दुष्ट को छोड़कर सज्जनों के बचनीं पर सब विश्वास करते हैं ।
- घर में बड़े होते हुए दुष्ट विपैले सांप को कोई सहन नहीं करता ।
- दुष्ट पुरुषों के लिए कोई भी कुकर्म दुष्कर नहीं है ।
- प्रायः दुष्ट पुरुषों का हृदय बड़े लोगों का विरोधी बन जाता है ।
- बुरे काम करनेवाला निश्चित ही दुर्गति को प्राप्त होता है ।
- दुष्ट की चेष्टा कष्टदायी होती है ।
- पुण्यहीन दुश्चरित्र मनुष्य का भूत और भावी सब बिगड़ जाता है ।
- दुष्ट का गुण भी दुष्ट नहीं होता ।
- कुत्ते की पूँछ की तरह दुर्जन को भी सीधा नहीं किया जा सकता ।
- अच्छी चर्मकमा सुनकर दुर्जनों का मन दुःखी होता है ।
- पापियों का मोह बड़ा प्रबल होता है ।
- दुष्ट को सैंकड़ों प्रिय बचनों के द्वारा दिया गया हितोपदेश भी व्यर्थ होता है ।
- दुर्जन बड़े-बड़े दान देने पर भी शांत नहीं होते ।
- इस संसार में दुराचारी पर सब कुपित होते हैं ।
- कार्य हो चुकने पर समय गंवाना व्यर्थ है ।
- समय के प्रभाव से कोमल भी कठोर बन जाते हैं ।
- सूर्य के पतन के समय अन्धकार की प्रबलता भी हो ही जाती है ।

६३५ कालो हि पुरतिक्रमः ।

६३६ प्राप्ते विनाशकाले हि बुद्धिर्जन्तोर्विनश्यति । प. पु. ५३.२४६

६३७ यमो ये विवस्ता यान्ति न तेषां पुनरागमः । प. पु. ४०.३८

६३८ यद्यतं यतमेव तत् । प. पु. ४०.३९

६३९ को न कालबले क्ली । म. पु. ५६.११

सम्बन्ध

६४० सहितः समसम्बन्धः । म. पु. ४९.१६१

सम्यक्त्वमिध्यास

६४१ वर्णनेन विना पुंसां ज्ञानवज्ञानमेव भोः । य. य. १८.१२

६४२ वर्णनेन समो धर्मो जगत्त्रये न सुतो न भविता । य. य. ४.४४

६४३ परमं सर्वं जगत्सर्वं सम्यक्त्वमिति विवेकतः । प. पु. ५१.८४

६४४ सम्यग्दर्शनमहाभौ तु दुःखं जन्मनि-जन्मति । प. पु. ६६.४१

६४५ सम्यग्दर्शनयोगात् गतिरुर्ध्वमसंशया । प. पु. २२.१७८

६४६ सम्यग्दर्शनरत्नं तु साक्षात्प्राप्य दुर्लभम् । प. पु. ६६.४२

६४७ मिथ्यात्वमोहिता जीवा न हि भद्मते क्वपि । पा. पु. २३.७२

६४८ किं न कुर्वन्मयी मूढाः प्रीदमिध्यात्मचेतसः । म. पु. ७१.१५५

६४९ मिथ्यात्वबुधितधियामरुध्य धर्ममेवजम् । म. पु. १.८७

६५० मिथ्यात्वेन सप्तं पापं न भूतं न भविष्यति । य. य. ४.४४

साधु

६५१ ऋषयस्ते सन्तु येषां परिग्रहे नास्ति धामने वा बुद्धिः । प. पु. ११६.६१

- समय का उत्सर्जन कठिन है ।
- विनाशकाल प्राप्त होने पर प्राणी की बुद्धि नष्ट हो ही जाती है ।
- बीते हुए (ये) दिन फिर लौट कर नहीं आते ।
- जो समय चला गया वह चला ही गया ।
- समय का बल पाकर सब बलवान् हो जाते हैं ।
- बराबरीबालों के साथ सम्बन्ध कल्याणकारी होता है ।
- सम्यग्दर्शन के बिना मामकों का ज्ञान अज्ञान ही है ।
- तीनों लोकों में सम्यग्दर्शन के समान न तो कोई धर्म था और न कोई होगा ।
- समस्त भावों में सम्यक्त्व ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है ।
- सम्यग्दर्शन की हानि होने पर अन्त-जन्म में दुःख प्राप्त होता है ।
- सम्यग्दर्शन से निःसन्देह ऊर्ध्वगति मिलती है ।
- सम्यग्दर्शनरूपी रत्न साम्राज्य से भी दुर्लभ है ।
- मिथ्यात्व से मोहित जीव धर्म पर भ्रष्टा नहीं करते ।
- पण्डित मिथ्यात्मी भूढ़ कोई भी कुकृत्य कर सकते हैं ।
- मिथ्यात्व-रोग से दूषित व्यक्ति को धर्मरूपी मोषधि ग्रहणिकर होती है ।
- मिथ्यात्व के जैसा पाप न हुआ है, न होगा ।
- ऋषि वे ही हैं जो निश्चय से परिग्रह अथवा याचना में बुद्धि नहीं रखते ।

६५२	मानसानि मुनीनां हि सुविद्याभ्यनुकम्पया ।	प. पु. ४८.४२
६५३	महात्मनामुन्नतगर्वसासिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ।	प. पु. ४०.५४
६५४	रामद्वेषविनिर्मुक्ताः श्रमणाः पुरुषोत्तमाः ।	प. पु. १०६.१०७
६५५	तेषां सर्वसुखान्येव धेः आसन्नमुपागताः ।	प. पु. ११८.११७
६५६	मुनिवृत्तेरसंगतम् ।	म. पु. ८.२४६
६५७	गुणबोधसमाहारे गुणान् गृह्णन्ति साधवः ।	प. पु. १.३५
६५८	साधुवर्गो हि सर्वेभ्यः प्राणिभ्यः शुभमिच्छति ।	प. पु. १७.१७१
६५९	साधुसमागमलक्ताः पुरुषाः सर्वेभ्योऽपि तेजसे ।	प. पु. ६२.६२
६६०	सता हि साधुसम्पन्नाश्चित्तमात्मनोऽप्यते ।	प. पु. ११०.२५

### सुख/दुःख

६६१	स्वसुखं को न चाप्नोति ?	प. पु. १४.३०६
६६२	सुखं नापरमुत्कृष्टं विद्यते सिद्धसीकृतः ।	प. पु. १०५.१६०
६६३	सुखं दुःखानुबन्धि ।	म. पु. ८.७७
६६४	भमसोमिर्वृत्तिं तौहवपुनस्तीह विचक्षणाः ।	म. पु. ४२.११६
६६५	यथावस्थितभावानां भट्टान् परमं सुखम् ।	प. पु. ४३.२०
६६६	प्रमदहेतवोऽपि सुखयन्ति सो दुःखितान् ।	ह. पु. ४२.१०२
६६७	परीक्षहजयायता सिद्धिरिष्टा महत्तमः ।	म. पु. ४२.१२६
६६८	शोको हि नाम कोऽप्येव विषमेवो महत्तमः ।	प. पु. ४५.८१
६६९	शोको हि पण्डितेर्दृष्टः विज्ञाचो मित्तनामकः ।	प. पु. ६.४८०



- मुनियों के सब अनुरूपता से सुख होते हैं ।
- उन्नत गर्वशाली और बलशाली मनुष्य भी महात्माओं के वशीभूत हो जाते हैं ।
- राग-द्वेषरहित श्रमण ही पुरुषोत्तम है ।
- सारे सुख उन्हें ही प्राप्त हैं जो श्रमण हो गये हैं ।
- मुनियों की वृत्ति परिग्रह-रहित होती है ।
- सत्पुरुष गुण और दोषों के समूह में से केवल गुणवाही होते हैं ।
- साधुवर्ग सभी प्राणियों का कल्याण चाहता है ।
- साधु समागम करनेवालों के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ।
- साधु-सम्बन्ध से सज्जनों का चित्त आनन्दित होता है ।
- अपने लिए सब सुख चाहते हैं ।
- सिद्धजीवों के सुख से उत्कृष्ट सुख दूसरा नहीं है ।
- सुख की परिणति दुःख में होती है ।
- विद्वान् लोग मत्त की निराकुलता को ही सुख कहते हैं ।
- जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित है उनका उसी प्रकार भ्रष्टा न करना परम सुख है ।
- दुःखी मनुष्यों को सुखद वस्तुएं भी सुखी नहीं करती ।
- महात्मा को परीषद्-जय से इष्टसिद्धि होती है ।
- शोक सबसे बड़ा विषभेद है ।
- पण्डितों ने शोक को ही दूसरा नाम पिशाच दिया है ।

६७० विवेकेन हि निर्मुक्त्य जायन्ते दुःखिनो जनाः । प. पु. १८.४७

६७१ उद्वेगकरणं जात्र कारणं दुःखमोक्षने । प. पु. ८३.१३२

स्थान

६७२ कथं सद्गता पादे चूडामणिस्थितिः । म. पु. ६२.४३६

स्थान

६७३ जननी जगन्माया । पा. पु. १२.३१६

६७४ माभ्या अर्नः सदा पुण्या जन्मदात्री इयाजहा । पा. पु. १२.३१७

६७५ संसारे न परः कश्चिन्मात्सीयः कश्चिद्वज्रसह । प. पु. ३१.५८

६७६ कृतं किं भाष्यैर्वै न समर्था दुःखमोक्षने । प. पु. ११.३५४

६७७ मधुरपि कषुरसीकथः । प. पु. १७.३०२

६७८ यः प्रयोजयति मानसं मुने अस्य तस्य स परमः  
कामधनः । प. पु. १०.१७८

६७९ मिलिते स्वीये कस्य सौख्यं न जायते । पा. पु. १७.६६

स्वामी/शासक/भृत्य

६८० यथा राजा-सचा प्रजाः । प. पु. १०६.१५६, पा. पु. १७.३६०

६८१ मयादानां नृपो मूलम् । प. पु. ५३.५

६८२ प्रजानां रक्षितारस्ते कष्टमद्य हि मारकाः । म. पु. ७०.४६४

६८३ कष्टकोटरलोनेन प्रजानां क्षेमधारणम् । म. पु. ४२.१६४

६८४ तरी चलति साक्षात्ता निशेधान्न चलन्ति किम् ? म. पु. ६.६

६८५ न पूजयन्ति के पुरुषं राजपूजितम् ? म. पु. ४५.११५

६८६ प्रायेण स्वामिनीमत्वं संधितानां प्रवर्तते । म. पु. ७४.२१७

- दुःखीजन विवेक से रहित हो ही जाते हैं ।
- उद्वेग करना दुःख से छूटने का कारण नहीं है ।
- पैरों में चूड़ामणि का पहनना सहन नहीं होता ।
- माता संसार में पूज्य है ।
- वधामयी जन्मदात्री माता लोगों द्वारा सदा पूज्य मानी गई है ।
- इस संसार में न तो कोई अपना है न कोई पराया ।
- जो दुःख दूर नहीं कर सकते ऐसे बंधुओं से कोई लाभ नहीं है ।
- दुःख देनेवाला बंधु भी शत्रु ही है ।
- जो जिसके मन को शब्दे कार्य में लगा देता है वही उसका परम बन्धु है ।
- स्वजनों से मिलने पर सबको सुख होता है ।
- जैसा शासक होता है वैसी ही जनता हो जाती है ।
- शासक भयान्त्रियों का भूल है ।
- सेव है, प्रजा के रक्षक ही सब भक्षक हो गये हैं ।
- समाजकष्टकों को दूर करने से ही जनता का कल्याण हो सकता है ।
- दुःख के हिलने से उसकी आत्माएं भी हिलती ही हैं ।
- राजमान्य पुरुष की सब पूजा करते हैं ।
- आश्रितों का स्वभाव प्रायः स्वामी के समान ही हो जाता है ।

६८७	तदेव राज्यं राज्येषु प्रबानां यत्सुखायहम् ।	म. पु. ५२.४०
६८८	तृष्णाप्रबिन्दुवद्राज्यं ।	पा. पु. १५.२१५
६८९	सकृज्जल्पन्ति राजानः ।	प. पु. ४६.६८
६९०	परगर्वापसादं हि समीहन्ते नराधिपाः ।	प. पु. १३४
६९१	स्वामिप्रसादलामो हि भूतलाभोऽनुजीविनाम् ।	म. पु. ३२.१००
६९२	भर्तृसेवा हि भूत्यानां स्वाधिकारेषु सुस्थितिः ।	ह. पु. ५६.२१
६९३	परमार्थो हि निर्भोक्तृपदेसोऽनुजीविभिः ।	प. पु. ९६.३
६९४	पिप्रिये मनु संग्रीत्यै तत्कारः प्रभुणा कृतः ।	म. पु. ७.१८१
६९५	निर्ममस्वास्थ्यतन्वस्य विभूत्यस्यामुधारणम् ।	प. पु. ६७.१४८
६९६	विभूत्यतां जगत्सिन्धुनाम् ।	प. पु. ६७.१४०

### स्वास्थ्य

६९७	सौख्याभावे कुतः स्वास्थ्यं, स्वास्थ्यभावे कुतः कृती ।	ह. पु. १८.१५२
६९८	स्वस्थे चित्ते हि बुद्धयः ।	ह. पु. ६.११६
६९९	उत्पलाशेन रोगस्य क्रियते त्वंसर्गं सुखम् ।	प. पु. १२.१५१
१०००	नामयो मोपनीयो हि जनन्याः ।	म. पु. ६.११८
१००१	अस्वस्थस्य कुतः सुखम् ?	म. पु. ५१.६७
१००२	निर्व्याधिः स्वास्थ्यमापन्नः कुरुते किन्तु भवत्यम् ।	म. पु. ११.१७०

### हिंसा/अहिंसा

१००३	हिंसा हि संसृतेषु सन् ।	प. पु. २.१८१
१००४	अहिंसा प्रवरं धूमं धर्मस्य परिकीर्तितम् ।	प. पु. २६.१००

- राज्यों में राज्य वही भख्या है जो जनता को सुख दे ।
- राज्य तिनके के अग्रभाग पर स्थित जलविन्दु के समान है ।
- ..... शासक एक बार ही बोलते हैं ।
- राजा दूसरों का अहंकार नष्ट करना चाहते हैं ।
- स्वामी की प्रसन्नता से ही सेवकों को प्राजीविका प्राप्त होती है ।  
प्राजीविका स्वामी की प्रसन्नता से प्राप्त होती है ।
- मृत्यों द्वारा अपना कर्तव्यपालन करना ही सच्ची स्वामिभक्ति है ।
- ..... निर्भीक अनुजीवियों का उपदेश ही परमार्थ है ।
- ..... स्वामी द्वारा किया हुआ सत्कार सेवकों की प्रीति के लिए होता ही है ।
- ..... सब से श्रेष्ठ और परतन्त्र मृत्यु के जीवन को धिक्कार है ।
- ..... लोकनिन्द्य दासमृति को धिक्कार है ।
- ..... सुख के बिना स्वास्थ्य और स्वास्थ्य के बिना कृतकृत्यता संभव नहीं ।
- मन स्वस्थ होने पर ही बुद्धि स्थिर रहती है ।
- रोग को उत्पत्तिकाल में ही सरलता से शांत किया जा सकता है ।
- ..... माता से रोग नहीं छुपाया जाता ।
- अस्वस्थ सुखी नहीं होता ।
- नीरोगी मनुष्य को औषधि सेवन करने की आवश्यकता नहीं होती ।
- हिंसा ही संसार का मूल कारण है ।
- अहिंसा ही धर्म का श्रेष्ठ मूल है ।

## विविध

- १००३ सवेसकार्त्तं न हि नर्म कोभते । ह. पु. ५४.६९
- १००६ अनुगतकृत्यैः प्राप्यते नं अनुप्यैः । प. पु. ४३.१२३
- १००७ ग्रन्थासात् किं न जायते ? म. पु. ४४.२३०
- १००८ अर्कैर्नासोक्तमारोमि हृन्वते जगतस्तथः । म. पु. ४५.१६
- १००९ उच्छिष्टभोजनं भोक्तुं भद्रे वाञ्छति को नरः ? प. पु. १२.१२९
- १०१० उदितस्य सूर्यस्य निश्चितोऽस्तमयः पुरा । म. पु. ६.१६
- १०११ उग्रमार्गः कं न पीडयेत् ? पा. पु. ३.१२०
- १०१२ कष्टमनिष्टेष्टं परम्वरा । म. पु. ४५.१६७
- १०१३ समस्तः प्रकटे वेगे कुतः स्थानं रवौ सति । प. पु. ४१.२६
- १०१४ दृष्टान्तः परकीयोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । प. पु. ४१.१०९
- १०१५ नवोऽनुरागवन्द्यो हि जगद्गुरुः । प. पु. ४७.१२
- १०१६ न विना पीठकल्पेन विजातुं मयः शक्यते । प. पु. ३.२८
- १०१७ न हि कश्चिद् गुरोः श्रेष्ठः शिष्ये शक्तिरसमन्विते । प. पु. १००.५०
- १०१८ बहिरङ्गो विविः कुर्यान्निरङ्गं विधी तु किम् ? ह. पु. १४.८६
- १०१९ भजतां संस्तवं पूर्वं गुणानामागमः सुखम् । प. पु. १००.५१
- १०२० भटेषु भटमत्सरः । म. पु. ४६.३२३
- १०२१ भ्रान्त्या प्रवर्तमानानां कुतः क्लेशाद् विना कसम् ? म. पु. ४६.६०
- १०२२ प्रक्षालनादि पंकस्य दूरावस्पर्शनं वरम् ? म. पु. ४३.३०६
- १०२३ मातेव नो शक्या त्यक्तुं जन्मवसुन्धरा । प. पु. १३.२८

- देश और काल के विपरीत हंसी सोना नहीं देती ।
- कर्तव्यपालन करनेवालों को ही सुख-शान्ति मिलती है ।
- अभ्यास से सब कुछ होता है ।
- संसार के प्रकाश को रोकनेवाले बंधकार का सूर्य ही नाश करता है ।
- उच्छिष्ट भोजन करना कोई नहीं चाहता ।
- उदित हुए सूर्य का अस्त पूर्व निश्चित है ।
- उन्मार्ग सबको दुःखी करता है ।
- इष्ट-अनिष्ट की परम्परा दुःखदायी होती है ।
- सूर्य से प्रकाशित स्थान में अंधेरा नहीं रह सकता ।
- दूसरे का उदाहरण भी शान्ति का कारण बन जाता है ।
- नवोदित चन्द्रमा को ही सब नमस्कार करते हैं ।
- बिना नींव के भवन नहीं बनाया जा सकता ।
- शिष्य के सजक्त होने पर गुरु को कुछ भी खेद नहीं होता ।
- आन्तरिक रोग में बाह्य उपचार व्यर्थ है ।
- पूर्व संस्कार से युक्त मनुष्यों को गुणों की प्राप्ति सहज ही हो जाती है ।
- योद्धा योद्धाओं से ही ईर्ष्या करते हैं ।
- शान्ति में पड़े लोगों को कष्ट के बिना फल नहीं मिलता ।
- कीचड़ में पैर रखकर उसे धोने की चपेक्षा उससे दूर रहना ही अच्छा ।
- माता की तरह ही जन्मभूमि का त्याग भी नहीं किया जा सकता ।

- १०२४ यः समुत्तरणीयः सः मार्गः । म. पु. ३२.४०
- १०२५ योज्यं कथं चेति त्वमेतद्विरुध्यते । प. पु. ७२.६४
- १०२६ रत्नानि ननु साम्येयं यानि यान्त्पुण्ययोगिताम् । म. पु. ३७.१६
- १०२७ रुचिस्त्रिषत्रा हि देहिनाम् । म. पु. ४३.३०४
- १०२८ बालेनापहतसिन्धोः कथं का न्यूनता भवेत् ? प. पु. ४६.२०६
- १०२९ जितकथाः प्राप्तः सरसीं नैव वृष्यति । प. पु. १४.६२
- १०३० शास्त्रमुच्यते तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते  
हितम् । प. पु. ११.२०६
- १०३१ स्नेहसोकार्णवेतसां का विचारणा ? म. पु. ७०.११
- १०३२ हित्वा बार्हिं महासिन्धुप्रसरः किं प्रसरति । पा. पु. ७.६५





- संसार सागर से पार होने का उपाय ही मार्ग है ।
- युद्ध करना और करुणा करना ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं ।
- रत्न वे ही हैं जो उपयोग में आवें ।
- प्राणियों की रुचि विचित्र होती है ।
- वायु से पानी की एक बूंद उड़ आने से समुद्र में कोई कमी नहीं आती ।
- विष का एक कण सारे तालाब को दूषित कर सकता है ।
- शास्त्र वही है जो माता के समान सबके लिए हितोपदेशी हो ।
- स्नेह और शोकयुक्त मन में विचारशक्ति नहीं होती ।
- महानदी समुद्र को छोड़कर सरोवर की ओर नहीं जाती ।

